जागृति—:

हे नाथ, मुझे उस लोक में जाग्रत करो जहाँ मैं सारे संसार के दुःख को अपने ऊपर ले लेने के सुख में मग्न हुआ विचरूँ। निखिल विश्व का ताप जहाँ मेरे रक्त को उष्ण बनाये रक्खे और अनन्त विश्व वेदना मेरे संगीत की सामग्री बने।

जहाँ एक मात्र तुम्हीं मेरे संगी हो, और सब भावनाओं की भावना मुझ में होकर तुमसे प्रणय करने की शक्ति दे।

जहाँ भुवन का भुवन मेरा भवन हो, और ससीम जीवन के बदले असीम जीवन पाकर मैं तुम्हारे-साथ नित्य नई क्रीड़ा किया करूँ।

रा० राय कृष्ण दास.

पं० इन्द्रजी विद्यावाचस्पति का सन्देश

भाई!

श्रद्धानन्द सप्ताह के अवसर पर तुमने मेरे कुछ वि-चार मांगे थे हैं। विचारों की आवश्यकता उनके लिये हो सकती है, जो पूज्य कुलपति जी के बनाये हुए आश्रम से बाहिर हों, क्यों कि वह आश्रम तो कुलपति जी के सब विचारों और संकल्पों का निचोड़ है। स्वामी जी ने अपनी सब आत्मिक और शारीरिक शक्तियां लगाकर गुरुकुल की स्थापना की और उसे बड़ा किया। वह उनके आदर्शों का एक भुत था। जो बालक और युवक उस भुत में ही निवास करते हैं, उन्हें बाहिर से नहीं, वहीं से आदर्शों का पाठ मिल सकता है। मैं तो प्रायः गुरुकुल की मानसिक यात्रा करके अपने सार्वजनिक जीवन के लिये स्फूर्ति का सन्देश लिया करता हूं। कुलपति जी ने जो कुल बनाया था, उनके उत्तराधिकारियों ने उसके शरीर को बदल देने में कोई कसर उठा नहीं रखी, तो भी यह विश्वास करने को जी नहीं चाहता है कि उस कुल की आत्मा बदल गई है। गुरुकुल क्या है आदर्श के लिये सर्वमेध यज्ञ का एक नमूना है। भारत के नव-युवकों के लिये सबसे बड़ा यह सन्देश है। भारत की संकटमय दशा सर्वमेध यज्ञ चाहती है। गुरुकुल उस यज्ञ का जीवित उदाहरण है। कुलपति जी अपने जीवन के आदर्शों को गुरुकुल की कुटिया में बांध कर रख गये हैं। प्रत्येक कुलवासी देश और धर्म के लिये त्याग भावना की-

एक २ घुरकी उस कुटिया में से जब चाहे तब लेसकता है - उसे पादर से विचार मांगने की क्या आवश्यकता है।

:- आज कल -:

:- स्वामी श्रद्धानन्द जी के कार्य -:

आज का दिन भारतीय इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा। आज के दिन एक धर्मान्ध मुसलमान ने अपने धर्म के नाम पर शहीद होते हुए वीर स्वामी श्रद्धानन्द जी को गोलियों के ऊपर से धर्म की बलिवेदी पर बलिदान कर दिखाया था। [illegible] ने समझा था कि इस काफिर की मृत्यु से मैं मुसलमानों का बड़ा उपकार कर रहा हूं। मुसलमानी धर्म के अनुसार काफिर का हरण मेरे लिये पुण्य [illegible] जायगा और यह शुद्धि का कार्य करने के लिये अब वे [illegible] लोग किन्तु उनकी ये दोनों इच्छायें पूरी न हो सकीं, [illegible] के कानून ने यह समझा दिया कि [illegible] गलती पर थे।

आज अछूतोद्धार और शुद्धि का आन्दोलन दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति कर रहा है। भारतीय महासभा (Indian National Congress) का अछूतोद्धार ही आज कल सब मुख्य कार्य हो गया है [illegible] है? सब समझने लगे हैं कि

इसके बिना हिन्दू जाति जीती
नहीं रह सकती उसके टुकड़े
टुकड़े होकर छिन्न भिन्न हो
कर अस्तित्व ही इस भारत से
मिट जावेगा। देश के बड़े २
नेता आज इस अछूतोद्धार और
शुद्धि के महान आन्दोलन को
अपना रहे हैं किन्तु इसके चरित्र
नायक के जीवन के कार्यों में यह
सबसे मुख्य कार्य रहा था। इन्होंने
उन्होंने जब देखा कि मुसलमान
सब संगठित हो रहे हैं क्रिश्चियन
अलग संगठित हो रहे हैं तब
हिन्दू जाति एक प्रकार इतना नष्ट
छिन्न भिन्न पड़ी हुई सड़
रही है अधिक से अधिक
होती रहे और, और फिर तो उस
की निश्चित मृत्यु है। यही सोच
कर उन्होंने शुद्धि का कार्य आरम्भ
किया और उसे इतनी अच्छी तरह
निभाया कि हजारों
वर्ष के पाखण्डी मुल्ला लोगों ने इस
के अस्तित्व को ही मिटा देना अच्छा
समझा।

आज कल श्री स्वामीजी का
केवल मात्र शुद्धि ही कार्य समझा
जाता है किन्तु मैं चेतावनी देता हूं
कि यदि स्वामीजी के अन्य कार्यों
को भुला कर केवल मात्र शुद्धि ही
कार्य रूप में रख लोगे तो हम
आगे आने वाली जनता के सामने
बड़ा भारी अपराध कर रहे होंगे
श्री स्वामी जी ने केवल मात्र शुद्धि
का ही कार्य नहीं किया किन्तु उन्हों

बलिदान महोत्सव के अवसर पर ब्रह्मचारियों के प्रति —

गांधीजी का सन्देश.

स्वामी जी के बलिदान महोत्सव के दिन हम उन के दलितों के प्रति प्रेम का अनुसरण करें।

सैय्यद महमूदजी का सन्देश.

गुरुकुल के विद्यार्थियों से स्वामी जी को बड़ी भारी आशा थी और वे विद्यार्थी त्याग की मूर्तियां हैं, इसलिये उनको अपनी मातृ भूमि के लिये सर्वस्व त्यागना चाहिए, और स्वतन्त्रता का पथ-प्रदीप बनना चाहिए।

स्वामी जी के कार्य.

पत्र प्रेषक-: राजेन्द्र प्रसाद जी.

अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन के महान कार्यों में दो सब से अधिक महत्व रखते हैं और ईश्वर की दया से तथा स्वामी जी की तपस्या के फलस्वरूप दोनों दिन प्रतिदिन उन्नति करते जा रहे हैं। जब देश में राष्ट्रीय शिक्षा की ओर ध्यान नहीं था और अंग्रेजी तथा सरकारी मुलाज़मत देने वाली शिक्षा की ओर ही सभी भारतवासी टकटकी लगा रहे थे उन्होंने गुरुकुल की स्थापना करके यह प्रमाणित कर दिया कि सच्ची शिक्षा मातृभाषा द्वारा ही दी जा सकती है। और उस का उद्देश्य सरकारी मुलाज़मत नहीं है। गुरुकुल से शिक्षा प्राप्त बहुतेरे ब्रह्मचारी आज गृहस्थाश्रम में आकर देश में निज का तथा सार्वजनिक काम कर रहे हैं और अपनी योग्यता तथा सच्चरित्रता से अपनी तथा गुरुकुल की ख्याति बढ़ा रहे हैं। दूसरा कार्य दलितोद्धार सम्बन्धी है। इस पुण्य कार्य में उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम दिन एक नवयुवक के उत्साह के साथ लगाये और भारतवर्ष के एक कोने से दूसरे तक भ्रमण करके दलितों के प्रति न्याय करने की शिक्षा और सन्देशा पहुंचाया। आज महात्मा गान्धी जी की घोर तपस्या और भीषण प्रतिज्ञा ने इस प्रश्न को एक नवीन महत्व प्रदान कर दिया है और स्वामी जी के कार्य की पूर्ति होती दिख रही है। स्वामी जी को श्रद्धाञ्जलि देते हुए आज सब को उन के इन दोनों बातों को सीखने और पालने की दृढ़ प्रतिज्ञा करनी चाहिये।

स्वामीजी की अमर आत्मा.

श्रीमती उमा नेहरू जी.

देश में श्रद्धानन्द दिवस मनाया जा रहा है। जब मैं स्वामी जी के जीवन का ख्याल करती हूं - उनके उत्तम विचार, उनके त्याग व सेवा तो ऐसा मालूम देता है कि वह आज दिन भी जिन्दा हैं। जो शरीर नहीं, लेकिन सारे भारत में, उनकी सूरत ही सब नजर आती है।

वह उमड़ती लहरें हरिजनों की, वह मन्दिरों का खुलना, वह गली गली भगवान की कथाओं का होना, इन कथाओं में हरिजनों का शामिल होना, मन्दिरों में हंस२ कर जाना और हाथ बांध२ कर भगवान के सामने खड़े होकर यह शिकवा करना कि भगवान! क्या आप हमसे रुष्ट हैं, क्या हम तुम्हारे जीव नहीं, क्या हम इतने दरिद्र थे जो तुम हमसे छिपे बैठे थे। आज कितने अरसे बाद तुमने दर्शन दिये।

वह सारे नजारे जब आंखों से गुजरते हैं तो एक बार स्वामी जी की शिक्षा व उपदेश याद आते हैं।

स्वामी जी की सेवा वह यही थी है कि हरिजनों को इन्सान समझना, उनका सुधार करना, जाति भेद को मिटाने की कोशिश करना, आपस में प्रेम व एकता के भाव पैदा करना और मन में सारी शक्ति को मिला कर, देश सेवा में लग जाना, यही स्वामी जी की सच्ची सेवा है, यही उन का उपदेश और यही उन सद्वाक्यों को नों से कह रहे हैं।

सुन्दर लाल जी का सन्देश.

पूज्यपाद श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी की पुण्य स्मृति के इस गम्भीर अवसर पर गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को कुछ सन्देश देने की मुझे आज्ञा दी गई है। सन् १९०४ से लेकर आज समय तक मेरा और पूज्य स्वामीजी का जो कुछ व्यक्तिगत सम्बन्ध था, वह तो था ही किन्तु उसके अतिरिक्त भारतवर्ष गुरुकुल के अध्यापकों और ब्रह्मचारियों के साथ केवल दो दिन के सहवास ने इस कुल की ओर से जो भावनायें मेरे हृदय में उत्पन्न करदी हैं उनके कारण गुरुकुल वासियों का अपने को एक वृद्ध कुलबन्धु मानने और पूज्य स्वामी जी को अपने शेष कुलबन्धुओं के साथ साथ कुलपिता कह कर स्मरण करने में मुझे विशेष गर्व अनुभव हो रहा है। इसलिए ऐसे अवसर पर ब्रह्मचारियों को मेरा सन्देश देना ऐसा ही है जैसा पिता की स्मृति में एक भाई का दूसरे भाई को सन्देश देना।

सन्देश तो क्या मेरी ईश्वर से यह प्रार्थना है कि इस दुखित देश के उद्धार और इसके निस्तार की जो आज हमारे दिवंगत कुलपति

के हृदय में भड़क रही थी वह हममें से हरेक के हृदय में भड़कने लगे।
जिस तरह से उन्होंने अपना सारा जीवन, अपना सर्वस्व देश के
सामाजिक धार्मिक तथा राजनैतिक सुधार को अर्पित कर दिया था —
उसी तरह हम भी कर सकें। भारत से अस्पृश्यता को दूर करना उनके
जीवन का एक विशेष उद्देश्य था। महात्मा गांधी के महान् व्रत ने इस
कार्य को अपूर्व स्फूर्ति प्रदान कर दी है। इस स्थिति में हममें से जो कोई
देश कुल से निकल कर विवाहित जीवन व्यतीत करने का विचार करे उनका
यह प्रण होना चाहिये कि वे पैतृक जातिपाति के बन्धन को तोड़ कर मान-
पूर्ण कर अपनी जन्म की जाति से बाहर गुण कर्म और स्वभाव के अनुसार
अपना नाता जोड़ेंगे। जो अविवाहित रहना चाहें वह और अनेक उपायों
द्वारा इस झूठी जाति पाति को मिटा देने की कोशिशें कर सकते हैं। पूज्य बाबू
भगवान दासजी के साथ मैं इस बात का विश्वासी हूं कि वर्णभेद में हमारा
धर्म केवल हिन्दू कहलाने वालों तक ही परिमित न रहे। हमें ढूंढने पर मुसल-
मान, ईसाई, और पारसी आदिक कहलाने वालों में भी उत्तम ब्राह्मण,
क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र मिल सकते हैं। यदि हम एक सच्चे जिज्ञासु के
समान असत्य को त्यागने और सत्य को ग्रहण करने के लिये सदा नि-
ष्पक्ष भाव से तैयार रहेंगे तो हमें पता लगेगा कि आधुनिक जाति पाति -
सम्प्रदायों और धर्म मजहबों की इन सब झूठी दीवारों के तोड़ डालने में ही
भारत के उद्धार की कुंजी है।

सन् १९३० और सन् १९३२ के राष्ट्रीय संग्रामों में गुरुकुल की

ओर से जो थोड़ी बहुत त्रुटियां रही हैं और जो कुछ मैंने गुरुकुल को देखा है उससे मुझे पूर्ण विश्वास है कि निकटवर्ती भविष्य में भी इस कुल के बालक मानव जीवन में और इस देश के अन्य सामाजिक तथा राजनैतिक कार्यों को पूरा करने में अपनी सर्वशक्ति से उद्यत होंगे।

Message.

I asked for message on occasion of ~~Swami~~ Swamiji's death anniversary. What better message can I send than ask Gurukul students to complete life work of Swamiji and remove untouchability once for all.

(Dr Syed) Mahmood.

बालपन

मेरे बचपन के कोमलतम -
दिव्य भाव संकल्प मनोरम -
वे चिर संस्कृत आदर्शों की -
मानस मंदिर की प्रतिमायें -
मेरे नयनों के आगे ही -
क्रमशः कांप कांप कर जल में
गलती जाती सलिलांचल में।
मेरे अहंकार की छोटी -
नाव साथ निज पालें बहती -
आज प्रबल जीवन प्रवाह में -
निरुद्देश्य डुलती है इत उत..
यौवन की झंझा से पीड़ित।
कहाँ किनारा, महाप्रलय! अब
डूबा सब कुछ रस प्लावन में।

क्या यह कहीं लगेगी नौका.
देवों का फिर दर्शन होगा?
इसी चिन्ता में रहता हूं -
प्राणों का विप्लव सहता हूं।

× ×. × × ×

(पृष्ठ लौटिये)

[illegible]

किसी सृष्टि का नूं विधाता
नये जगत का नया पितामह।
नव आदर्श नई संस्कृतियां -
जागे 'प्रगति' नई भावना
पथ दर्शन, अग्रेसर जावें.
नये लोक आने वाले का।

मृत्यु से

- मृत्यु से -

i. दूर हुईं लिप्सायें सारी -

प्राणों का बन्धन छूटा।

जगी चेतना अमर हृदय में -

मानस का मन्थन छूटा॥

ii.

धधक उठीं चिन्ता ज्वालायें

जीवन के सूने तट पर।

छाई- किरण निशीथा चेतना

मानवता अंचल पट पर॥

iii. मुक्त हृदय से कहो कहो,

क्या अब अनन्त में खेलूंगी

प्रिय के चरणों पर जीवन की -

निधियां अर्पित कर दूंगी।

ले. 'व्यथित हृदय'

अनुरोध

पावस की संध्या में छाया छाया,
घिर आते गहरे सावन-घन —
होती है जब अविरल वृष्टि।

तब दिखलाने को पथ प्रियतम
दो नयनों के उर से अनुपम -
करना विद्युद्युति की सृष्टि॥

दीख नहीं पड़ता हो जब मग,
भय विह्वल हों जब इस पग पग -
तब तुम करके दया विशेष।

अरुण बिन्दुओं से अनुरञ्जित,
इन्दु - संजीवन - शक्ति - सुसज्जित -
आलोक करना हृदयेश।

ले० श्री राजेश्वर प्रसाद [illegible]

भेंट

१.

गूंथ कर हृदय पुष्प की माल,
पिरोया उसमें प्रेम प्रवाल।
पाद पद्मों पर तेरे लाल,
आज मैं दुखिनी हुई निहाल॥

२.

बेर शबरी के इनको मान,
सुदामा के या तन्दुल जान।
करो स्वीकार इसे भगवान,
क्षमा कर कठिन कष्ट का ध्यान॥

ले० श्री बदरीनारायण शुक्ल

मन

१

किन स्वप्नों के मृदुल नीड़ में
पाते तुम विश्राम ?
हे मेरे मानस विहङ्गवर!
कहां तुम्हारा धाम!

तमस निशा के प्रति प्रभात को
लोहित वेग से गान;
मेरे जीवन का चिरसंचित
कहां जुगाते राग ?

चंचल, चपल, तड़ित, द्रुत मारुत
को मार कर मुंह बन्द।
कहां जा रहे हो क्षण क्षण पर
हे मानस मकरन्द!

मेरे अन्तस्तल के बन्दी
उन्मनता की मूर्ति!
उच्छृङ्खल अल्हड़ की सी
अभूतपूर्व स्फूर्ति!

निज रहस्यमय आवरण को
करो अनावृत, ज्ञात,
जीवन सन्ध्या में होने दो
विकसित विमल प्रभात॥

श्री शम्भुदयाल सक्सेना

कुलमाता की स्मृति में

i.

बीते अनेरे साल तेरी पुण्य गोद में ही -
खेल कूद रोज़ रोज धूल ही मचाई है।
धूम भी मचाई, एक नये से नये ही खेल
राजा मन चोर के भी चलते जमाये हैं।
बाल रवि किरणों ने झुक दूर २ तेरी -
तेरे शीश पद्म पर लालिमा चढ़ाई है।
फिर रोज तेरे स्वच्छ जल में शशांक ने भी.
ध्यान में ही कितनी समाधियां लगाई हैं।

ii.

हम जो उछलते थे, तू भी धूल रूप में ही.
ऊंची सी उछाल मार नीचा कर लाती थी।
कभी जो बहाते अश्रु धारा धूलियों में तेरी -
झट से दुबक एक ओर बैठ जाती थी।
कभी जो हमारी दुखपङ्क्ति जलती सी तुझे,
मुख से निकल एक ओर दीख पाती थी।

. . . .

(पृष्ठ लौटिये)

आजकल

खींच लेती, अपने दूर [illegible] देश से ही,

शीतल जल [illegible] साथ प्यास भी बुझाती थी।

(७)

प्रातःकाल रोज अंशुमाली आइके प्रभार,

लाल कर जोड़ निज सविता को नमाता है।

सांयकाल तेरे से विदाई मांगने को बस

आते वक्त में भी सारे हाथ जोड़ जाता है।

चन्द्र ने निशीथ में भी देखने को एकबार

छोटे छोटे तारानेत्र कैसे खुलवाता है।

सारे दिन गर्म आहें भरता को देख माता!

रात तेरा पल २ आंसु बहाता है।

श्री बलदेव जी

कुलपिता.

मुग्ध हृदय में स्नेह भरे तुम
कुलपति क्या फिर आओगे.
धूल सने कृश तन को मेरे
क्या तुम अंक लगाओगे
त्रस्त हो रहे विरह में व्याकुल
हो ये काया जीवन से.
विमल नयन तुम तात हमारे
फिर कब आ बन जाओगे.
भर अधीर तन चीर कलेजा.
हृदय देव तुम को लखकर
पावस प्रेम दिखाने को तुम
कुलपति फिर जब आओगे,
उस अवसर से तब आवेगे
दर्द भरे दुखिया दिल में
प्रेम तुम्हारा उछल पड़ेगा
जब तुम अंक बिठाओगे ॥.

श्री योगेन्द्रनाथजी भान्पात.

— स्वामी श्रद्धानन्द जी की विस्तृत दृष्टि —

लेखक-: प्रो॰ सत्यव्रत जी .

मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति बढ़ने की ओर कुछ दूर जा कर ठहर जाने की है। हम लोग भी पहले बढ़ते हैं, पच्चीस या तीस वर्ष तक शरीर पनपता है, परन्तु फिर जा कर ठहर जाता है। जो लोग इस प्रकार ठहर जाते हैं वे साधारण हैं. असाधारण महान् व्यक्तियों में यह नियम काम नहीं करता। शरीर तो पांच भूतों का है वह तो कभी न कभी ठहर ही जायेगा, परन्तु महान् आत्मा सदा विकास की तरफ ही अपना कदम बढ़ाता जाता है। उच्च आत्मा का यही लक्षण है। स्वामी श्रद्धानन्द विकास में से गुजरते हुये कहीं ठहरे नहीं। उन्होंने अपने जीवन के सम्मुख जो लक्ष्य बनाया उस को पा कर और उसे

आज कल

पीछे छोड़ कर वे और आगे निकल गये। साधारण लोग तो जो कुछ अपने सामने देखते हैं, उसी को अपना लक्ष्य बना लेते हैं और या तो उसे पा नहीं सकते और पा लेते हैं तो उसे पा कर वहीं ठहर जाते हैं। स्वामी श्रद्धानन्द जिस किसी चीज को देख कर उस को अपना लक्ष्य बनाने वाले नहीं थे। उन का लक्ष्य महान होता था, वे कुछ ऐसे बने हुवे थे कि अपने लक्ष्य को सदा पा भी लेते थे और उसे पा कर उसे पीछे छोड़ कर उस से आगे भी निकल जाते थे और गुरुकुल उन्हीं लक्ष्यों में से एक था। यदि गुरुकुल में ही वे खतम हो जाते तो वे इतने महान न होते। गुरुकुल तो उन के आत्मा के विकास में एक मंजिल थी। वे कई स्वप्न लेते थे, उन में से यह भी एक स्वप्न था। वह पूरा हुआ तो वे उसे लेकर चिपटे नहीं बैठे रहे। गुरुकुल का स्वप्न ले कर

उसे पूरा किया और निष्काम भाव से वे इस से आगे निकल गये। आर्य समाज उन के जीवन का बड़ा भारी क्षेत्र रहा था। वे गुरुकुल पार्टी के नेता समझे जाते थे। पार्टियों के आपस के झगड़े बहुत कुछ उन्हीं के पैदा किये हुवे थे, परन्तु उन के आत्मा के विकास में यह एक मञ्जिल थी, समय था जब वे लड़े थे, समय आया जब पुराने लड़ने वाले तो उन्हीं बातों पर लड़ते रहे परन्तु ये उन लड़ने वालों को मिलाने के लिये उठ खड़े हुवे।
अपने अन्तिम दिनों में स्वामी श्रद्धानन्द जी ने पंजाब का दौरा इसी लिये किया था कि हो सके तो कालेज और गुरुकुल पार्टी मिल जाय। छोटे मनुष्य की यही निशानी है कि वह आत्मिक विकास में एक जगह जा कर ठहर जाता है। महान् पुरुष का आत्मा आगे ही आगे विकसित होता चला जाता है। वह सत्य का आविष्कारिक

दर्शन करता चला जाता है और आज जिसे वह सत्य समझता है, कल उसे वह अधूरा सत्य समझने लग जाता है और कुछ दिनों बाद वह वहां पहुंच जाता है जहां पे छोटे छोटे सत्य असत्य प्रतीत होने लगते हैं। यह शरीर तो नष्ट हो जायेगा। ऐसा समय आता है जब शरीर उन्नति नहीं कर सकता, परन्तु आत्मा तो अमर है उस की जीवन यात्रा में यह जीवन तो समुद्र में बिन्दु के समान है। इस लिये यदि आत्मा भी शरीर की तरह खड़ा हो जावे तो वह आत्मा महान् नहीं बन सकता। स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने जीवन काल में अनेक वेश बदले। कभी वे धर्म के क्षेत्र में दिखलाई दिये तो कभी सामाजिक आकाश में जा खड़े हुवे। कभी उन्होंने राजनीति को अपनाया

तो कभी किसी अन्य क्षेत्र में मिल पड़े। इससे कुछ लोग उन की अस्थिर वृत्ति समझते हैं परन्तु यही उन की महानता का रहस्य है। उन का आत्मा विकास के साथ साथ सत्य का अधिकाधिक दर्शन करता चला जा रहा था इस लिये उन के दृष्टि बिन्दु में ऐसा समय आया जब राजनीति ही धर्म था और धर्म ही राजनीति थी। स्वामी श्रद्धानन्द के जीवन और उन की महानता को समझने के लिये हमें मानसिक विकास का यह तत्व नहीं भुलाना चाहिये कि विकास में से गुजरता हुआ आत्मा तभी पूर्ण विकास को प्राप्त कर सकता है यदि वह कहीं ठहर न जाये, कहीं उलझ न जाय, सामयिक तथा क्षणिक को निरन्तर तथा सदा का रहने वाला न समझ ले। स्वामी जी का जीवन आत्मिक विकास के इसी नियम का एक जीवित जागृत उदाहरण है।

: -सत्य की विजय— :

लेखक -: ब्र० सुरेशचन्द्र जी

आज से बीस शताब्दी पूर्व अन्धकार में एक दिव्य ज्योति चमकी। वह शुभ्र दिव्य ज्योति पहुंचती है गरीब के घर गरीबी मिटाने, रोटी के लिये तरसते हुए भूखे की भूख मिटाने, प्यासे की प्यास बुझाने और कुष्ठ रोग से पीड़ित कोढ़ी की रोग शय्या पर। वह शुभ्र ज्योत्स्ना अपने दिव्य आलोक से इस जगती तल में सत्य अहिंसा को आलोकित कर गई। वह ज्योति, सत्य के मार्ग की मार्ग दर्शिका बनी। सच मुच सत्य का मार्ग कांटों से बिछा हुआ है। पग २ पर तीव्र असह्य वेदनाएं होती हैं। बिलकुल सीधे ऊंचे पहाड़ों पर चढ़ना पड़ता है, बड़ी २ खाइयों को पार करना होता है, बड़े २ प्रलोभनों और शत्रुओं का

सामना करना होता है। परमात्मा अपने भक्तों की, सत्य पथ के राहियों की कठिनतम परीक्षाएं लेता है। भक्तों को अपने अस्तित्व को मिटाना पड़ता है, खुद ना चीज़ होकर अपने को बलिदान करना पड़ता है। यह सत्य पथ का राही उस परम सत्य का प्रचार करता है, मानव जाति के लिये दीपक बनता है परन्तु उसे भी हाथों और पैरों पर कीलें गाड़ कर सूली ([illegible]) पर चढ़ा दिया जाता है। वह भी अपने खून के कतरों से भरी सत्य की झोली उस दो आधार वाले प्रेममय प्रभु के चरणों में समर्पित करता है। यह भक्त कौन था? आइए

एक दूसरी आत्मा इस भूतल पर अवतरित होती है। एक निर्जन वन में एक वृक्ष के नीचे वर्षों तक बैठ, तपस्या कर प्रभु की अमर ज्योति को प्राप्त कर, सत्य अहिंसा का उपदेश करती है। इसी तरह मानव-जाति के आगे 'अहिंसा परमो धर्मः' की सत्य और सुन्दर सिद्धान्त का प्रचार

आज कल

करते हुए अपना प्राण त्याग
देती है। यह जंगल
में एकान्त में बैठ सत्य
और अहिंसा का उपदेश
करने वाला कौन? यह
भगवान बुद्ध थे। इसी
प्रकार भारत में एक-
प्रभु का प्यार पैदा-
होता है। सच्चे शिव की
खोज में अलख नन्दा
की चोटी पर जाता है,
शेर चीते जंगली जानवरों
का मुकाबिला करता है
कन्द के टुकड़े खाकर
क्षुधा को मिटाता है
इसी प्रकार सब आपत्ति-
यों को झेलता हुआ,

सत्य प्रदीप के प्रकाश
से संसार को प्रकाशित-
करता है, इसको सोप-
कराया जाता है और-
यह इसी तरह सत्य के
लिये अपने प्राण का-
त्याग करता है और कह-
ता है। ईश्वर तेरी इच्छा
पूर्ण हो, यह प्रभु का
प्यारा कौन? दयानन्द।

इन्हीं महापुरुषों की
कोटी में इस स्थान के
एक शिष्य को रखते हैं
आज भारत की राज-
धानी दिल्ली में एक-
मकान के दूसरे मंजि-
ल पर एक सन्यासी-

रोग शय्या पर पड़ा हुआ है। आप-
ने पिछले सालों में बराबर-
विश्वास दिलाये जाने पर भी
कि आप उसके अच्छे हो जा-
येंगे। वह कहता है कि न
अब यह शरीर ईश्वर की से-
वा के लायक नहीं रहा अ-
ब तो दूसरा चोला धारण
कर ही ईश्वर की सेवा कर
सकूंगा। वह तो इस इन्त-
जार था। वह उत्सुक हो
रहा था कि आगे क्या होने
वाला है। एक मुसलमान-
आता है जीने पर से ऊपर
चढ़ जाता है। सेवक उनसे
कुछ पूछता है कौन? मैं
अब्दुल रशीद। सेवक-
क्यों भाई कैसे आये।
अब्दुल रशीद-: धर्म पिपासा
है।

सेवक-: स्वामीजी से उन्होंने
मिलने की मुमानियत कर
रखी है। इतने में स्वामी
को कुछ सुनाई पड़ा उनके
सेवक के सहज उत्तर जवा-
ब से उसको आने देने के
लिये कहा। वह अन्दर में
आया और कहा कि मुझे
प्यास लगी है। स्वामी ने
सेवक से कहा कि ~~प्यास~~
लगी है पानी पिला दो।
सेवक ने पानी दिया।
मगर उसकी प्यास पानी
से कहां बुझ सकती थी।
उसको तो खून की प्यास
थी। उसने स्वामी के-
विशाल वक्षस्थल पर
पांच फायर किये।
स्वामी जी वहीं लोटपो-
ट हो गई। स्वामी ने

अपने रक्त से कटोरे को भर कर अपने कातिल की प्यास बुझाई। पर थी आदर्श मृत्यु।

आज दिल्ली में शहीद एक सन्यासी नहीं, वरन बादशाह की अर्थी का जलूस निकल रहा है। लाखों की तादाद में लोग जमा हैं। आज दिल्ली की सड़कें फूलों से बिछी बिछी हुई हैं। बैंड बाजों से उस दिवंगत आत्मा के मृतदेह का स्वागत कर रहे हैं। बीच में सजे हुए फूलों से बीधे हुए एक विमान पर उसी सन्यासी का मृतदेह जो अब भी ओजस्वी मालूम होता है पड़ा है। उसकी छाती फु-ली हुई है मानो अब-भी ~~बन्दूकों~~ बन्दूकों को आह्वान कर रही है। मकानों की छतें मनुष्यों से भरी हुई हैं। स्त्रियें छतों पर से पुष्प बरसा रही हैं कहीं २ पैसे और रुपये भी बरसाये जा रहे हैं पर शान दार बादशाह का जलूस दिल्ली के

सत्य कथि किया

इतिहास में अनुपम ही था। दिल्ली के पुराने बादशाह भी अपनी कब्रों में से उचक २ इस बादशाह का जुलूस ~~दिल्ली के इतिहास~~ को किन्तु आंखों से देख रहे थे। देवता भी आकाश में विमान से पुष्प वर्षा कर रहे थे यह देवताओं का विमान इस सन्यासी के स्वागत के लिये नीचे उतरा और सन्यासी को इसमें बिठा कर ऊपर उड़ गया। लोग देखते ही रह गये और आज भी उस स्थान पर लोग उस - स्थान पर लोग उस सन्यासी के देह को ~~विमान~~ देवताओं से विमान पर ले जाते हुए देख रहे हैं। स्वर्ग में इन्द्र का दरबार लगता है सब देवता एकत्रित होते हैं। बारी२ से एक उठ कर उस सन्यासी का स्वागत करते हैं इन्द्र अपने आसन को छोड़ उस सन्यासी को उस पर बिठाता है। हर्षध्वनि होती है। नृशंस कातिल अब्दुल रशीद आता है और जार २ रोता है और स्वामी के चरणों में गिर जाता है

आज कल

होते होते २ उसकी चोटी बंध जाती है। स्वामी कहते हैं पुत्र! इसमें तेरा दोष नहीं वह भार समाधान करता है। सारी सभा में सन्नाटा छा जाता है। कुछ देर बाद हर्ष ध्वनि होती है। आज सभा पंडितों के सामने हिंसक शक्तियां नीची हो जाती हैं, लजा जाती हैं। यह सन्यासी कौन? यह देव सभा का सभापति-कौन? यह स्वामी दयानन्द हैं यही हमारा नायक है।

———— ○ ————

श्रद्धानन्द यति

ले॰ प्रो॰ लाल चन्द जी.

प्यारे स्वामी तेरा स्मरण करना अपना कल्याण करना है। तू कैसा हृष्ट पुष्ट, विशाल काय और शूर वीर था। जब तक तेरा दम में दम रहा व्यायाम नियमपूर्वक करता रहा, स्वास्थ्य के नियमों का भली भांति पालन करता रहा और अपने शरीर को भगवान का मन्दिर समझ कर इसे स्वच्छ और पवित्र रखता रहा। तूने अनेक तप तपे और शरीर को ओजस्वी बनाया। प्यारे स्वामी आज हम तेरे सम्मुख यह संकल्प करते हैं कि हम भी तप तपेंगे, व्यायाम करेंगे, शरीर को मजबूत बनायेंगे और जीवन शूरों की तरह बितायेंगे।

तू निर्भय था। भय भी भयभीत हो कर तेरे पास नहीं फटकता था। शेरों की गरज से तू न घबराया। गोरों और गोरखों की संगीनों और बन्दूकों से तू न घबराया। बला का हौसला था। गज़ब की हिम्मत थी, क्या दिल था, क्या दिलेरी थी। कुछ तो वह बात हम में भी हो तो जीवन का मज़ा आ जाय।

तेरी काया तो विशाल थी ही पर तेरा हृदय कहीं अधिक विशाल था.

आज कल

दीन दुखियों का रोना सुन कर तेरे लिये चैन से बैठना असम्भव हो जाता था। जहां किसी दुखी की पुकार सुनता वहीं पहुंच जाता था। दीनों की सेवा कर के तू अपने चित्त को शान्त करता। कितने अनाथों का तूने हाथ पकड़ा, कितने निस्सहायों का तू सहारा बना, कितने करुण आक्रन्दन करने वालों के तूने आंसू पूंछे।

निष्काम प्रेम तुझ मे था हो पर तूने इसे देश सेवा से बचने का बहाना न बनाया। भारतमाता की तूने खूब सेवा की। ओ सच्चे, पक्के देशभक्त! तू सरकार की आंखों में कांटा बन कर खटकता था (और कौन जानता है कि तेरी मृत्यु, जो एक मुसलमान के हाथों हुई थी उस में पीछे से अंग्रेजों का कितना हाथ था) ओ विजयी वीर! तूने जिस ओर कदम उठाया दुश्मन को दबाया और मज्लूम को बचाया। जहां तू होता था किसी जालिम की हिम्मत न पड़ती थी कि जुल्म कर सके। ओ जालिमो को ठीक करने वाले! तू कहां चला गया। सब ओर देखता हूं पर तेरा सानी नहीं मिलता। तेरे जैसा रोल किस में है, तेरे जैसा दिल किस में है, तेरे जैसी शक्ति किस में है, तेरे जैसा क्षात्र तेज कहां है। तू गया तो ये सब भी चले गये।

ओ सत्य के पुजारी, सत्य-धर्म के प्रचारक, सरल दिल वाले, साफ़ २ बात करने वाले, झूठों को अपनी सत्तामात्र से लज्जित करने वाले तू ने जहां झूठ देखा उसे वहीं

आज कल

त्यागा और जब सत्य प्राप्त हुआ तो उस के साथ जोर से चिपट गये। आधा इधर आधा उधर, डीलम ढाला, अनिश्चित ऐसा तू कभी न था। जब पाप का जीवन छोड़ा तो हसरत से एक बार भी तो मुड़ कर न देखा। जब छोड़ा तो सदा के लिये छोड़ा उधर से सदा के लिये मुख मोड़ा और कल्याण मार्ग पर पूरी तेजी से दौड़ा इतनी तेजी से दौड़ा कि जन्मों की मन्जिल वर्षों में तय कर डाली और वीरों की मृत्यु को प्राप्त कर के अपने प्यारे भगवान की गोद में जा आराम लिया।

ओ निराले तपस्वी! तेरी तपस्या का क्या वर्णन करूं। तू तो बड़े ऐश ओ आराम में पला था। तुझे जंगलों में विचरने की क्या सूझी। छोटे छोटे बालकों के साथ घने जंगल में जा घुसा, जा बसा, झोपड़ियां डाल दी, डेरा लगा दिया, जंगल साफ किया, जंगल में मंगल बना दिया। गर्मी सही, सर्दी सही, अनेक प्रकार के कष्ट सहे। सच बता स्वामी यह शक्ति तुझे कहां से मिली। हां हां यह शक्ति तुझे कहां से मिली ... .

मेरे इस प्रश्न पूंछने पर जाने मुझे क्या हुआ। मेरी आंखों के आगे अंधकार छा गया, बाहर के पट बन्द हुवे और अन्दर के पट खुल गये। देखता क्या हूं प्यारे स्वामी देदीप्यमान, दिव्य वस्त्र धारण किये हुवे मेरे सामने खड़े हैं। पुत्र

आज कल

एक मिनिट की छुट्टी मिली है। तेरे प्रश्न का उत्तर देता हूं और चलता हूं। मैं चरणों में गिर पड़ा। नीचे गिरे हुये मुझे यह शब्द सुनाई दिये "पुत्र! शक्ति तो मुझ में भी है और सब कुलपुत्रों में है पर वह सोई हुई थी। गुरु भक्ति और भगवान की भक्ति से वह जाग पड़ी और मैंने असम्भव को सम्भव कर दिखाया"। जब मैं खड़ा हुआ तो मेरे सामने स्वामी न दीखे और मुझे अनुभव हुआ कि अभी मेरे सिर पर प्रेम से कोई विशाल हाथ फेर रहा है।

श्रद्धानन्द.

लेखक - ब्र. रामनाथ जी.
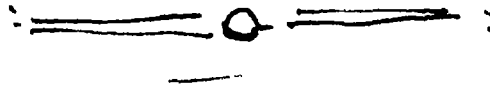
स्वामी दयानन्द के बाद आर्यसमाज के क्षेत्र में सफल कार्य करने वाला यदि कोई है तो - वह सबसे है - वह श्रद्धानन्द है। वैसे तो कई नाम गिनाये जा सकते हैं, जिन्होंने इस क्षेत्र में प्रशंसनीय सफलता प्राप्त की है, किन्तु श्रद्धानन्द का कार्य कुछ और ही तरह का है - सचमुच बहुत महत्त्वपूर्ण है। दयानन्द कह गये, सारे भारत को उन्नति के शिखर पर पहुँचाने के लिये आवश्यक है कि प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली के अनुसार गुरुकुलों की स्थापना हो। किन्तु इस आह्वान को यदि किसी ने समझा - सच्चे हृदय से समझा, तो वह थी स्वामी श्रद्धानन्द की आत्मा। उसने समझ लिया कि जबतक भारतीय उन्नति के विशाल भवन की नींव विद्यार्थियों के दिमागों में न रक्खा जायगा, तब तक यह भवन कच्चा ही रहेगा - नवयुवकों में, गृहों में आर्यसमाज के जीवनयुक्त विमल सिद्धान्तों का प्रचार कुछ भी फल न लायेगा। यदि विद्यार्थियों के दिमागों में - विदेशीय शासन की प्रबल छाप पड़ जायगी - मन्दिर की भावी ईंटें कच्ची और खोखली हो जावेंगी - तो असम्भव है कभी यह मन्दिर स्थिर भी हो सके। इसीलिये तो तत्कालीन शिक्षणालयों के मुकाबिले में गुरुकुलों का खड़ा होना

आवश्यक था।

आजकल तो इन गुरुकुलों की कमी नहीं है, स्थान २ पर कन्यायें व विद्यार्थी उपयुक्त शिक्षा पा रहे हैं, तथा आवश्यकतानुसार इनका प्रचार बढ़ भी रहा है। किन्तु उस समय में किसी गुरुकुल को स्थापित करने में किन कठिनाइयों का सामना पड़ सकता था, और जैसा कि वीर श्रद्धानन्द को पड़ा, वह किसी से छिपा नहीं है। वर्तमान सब गुरुकुलों का आदि जन्मदाता तो श्रद्धानन्द ही है, उसी ने तो इस आदर्श को लोगों के सामने क्रियारूप में रक्खा था। एक मनुष्य के किसी कार्य में सफल हो जाने पर तो फिर बहुतेरे उस कार्य को करने वाले निकल आते हैं, लेकिन प्रारम्भ में हाथ डालना ही कठिन होता है। श्रद्धानन्द ने इसी कार्य का तो नमूना हमारे सामने उपस्थित किया है, दयानन्द यदि विरजानन्द के सच्चे शिष्य थे तो कहने की आवश्यकता नहीं कि श्रद्धानन्द ने दयानन्द के आदेश को निबाहने में कुछ कसर न रक्खी - वह उनके सच्चे शिष्य कहलाने के अधिकारी हैं, दयानन्द की मनोनीत स्कीम को श्रद्धानन्द ने ही पूर्ण किया था।

उसका कार्य यहाँ तक ही सीमित नहीं। जहाँ धार्मिक क्षेत्र में उसने चमत्कार-पूर्ण कार्य किया, वहाँ राजनैतिक क्षेत्र में भी वह हमारा अगुआ है। नि-

इस प्रकार गुरुकुल का नाम लेते ही श्रद्धानन्द की मूर्ति सामने आकर खड़ी हो जाती है. उसी प्रकार यदि अछूतोद्धार की ओर जायें तो वहाँ भी श्रद्धानन्द अछूतों के प्रति सहानुभूति रखने वाले तथा अछूत की समस्या को दूर करने के लिये सबसे प्रथम प्रयत्न करने वाले के रूप में हमारे सन्मुख उपस्थित हो जाते हैं। आज अछूत का प्रश्न भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति में प्रबल बाधक समझा जा रहा है, आज महात्मा गांधी इसको हटाने में अपनी पूरी शक्ति लगा रहे हैं, इसी के लिये तो एक समय श्रद्धानन्द के हृदय से आवाज़ निकली थी। उसने पुकार कर कहा था, जब तक ये अछूत भाई हमसे आदर नहीं मिल जाते, जब तक हमारी समाज के प्रमुख अंग हमसे अलग हैं. उनके प्रति घृणा की दृष्टि से देखा जाता है, तब तक सम्भव नहीं कि यह जाति अपने गौरव को प्राप्त कर सके।

श्रद्धानन्द की यह स्कीममात्र ही न थी, इसे कार्यरूप में लाकर भी तो उसने दिखाया। न जाने कितने बिछुड़े भाइयों को उसने हमसे मिलाया। केवल मनसूबे बांधना तो उसके स्वभाव के ही प्रतिकूल था। जिसके विषय में सोचता था, उसे समाप्त करके ही छोड़ता था। व्याख्यानों के बल से वह नेता न था, वह तो सच्चा नेता था

हिन्दू-मुस्लिम एकता, जिसका न होना आज सबको अखर रहा है, जो कि स्वतन्त्रता प्राप्ति में बाधक हो रहा है, के लिये उसने जी जान से प्रयत्न किया। १९२१ के सत्याग्रह आन्दोलन के समय तो उसने जिस उत्साह से कार्य किया उसके लिये राष्ट्र सर्वदा उन्हें स्मरण करता रहेगा। शुद्धि और हिन्दू-मुस्लिम एकता का कार्य वह जिस हृदय से करते थे, एक समय मुसलमान भाइयों ने उसे अच्छी तरह समझ लिया था। किन्तु दुःख तो इस बात का है कि उन्होंने उसे भुला क्यों दिया। उनके हृदय की सत्यता, शुद्धता और निष्पक्षता को न देख कर, उन्हें अपने धर्म की वृद्धि में बाधक समझा। और इसी भ्रम का यह परिणाम हुआ कि उन्होंने एक रत्न को इस लोक से सदा के लिये विदा कर दिया।

वह तो अन्त में भी अपने सच्चे भावों को यहाँ छोड़ गया। आज मुस्लिम भाइयों में भी ऐसे लोग हैं जो श्रद्धानन्द के अभाव और अपने भाइयों के अनुचित व्यवहार को अच्छी तरह अनुभव करते हैं। पूज्य स्वर्गीय श्रद्धानन्द की खूबियों का कौन वर्णन कर सकता है! हमें तो सौभाग्य है कि हमारा उसके साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध है। हमें तो यह कहते हुये अभिमान होता है कि वह हमारा कुल पिता था, हम उसके सुपुत्र हैं।

-स्वामी श्रद्धानन्द जी का कार्य सूत्र-

श्री देवराज जी विद्या वाचस्पति.

स्वामी श्रद्धानन्द जी ने सन्यास ग्रहण करने से पूर्व गुरुकुल से विदा होते समय कुलवासियों को शुभसन्देश दिया था कि "अब मैं गुरुकुल का क्षेत्र अधिक विस्तृत करूंगा"। गुरुकुल में रहते हुवे अपने उपदेशों में स्वामी जी कहा करते थे कि ब्रह्मचारियों के लिए ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना इसलिए और भी कठिन है क्योंकि गृहस्थी लोग ब्रह्मचर्य व्रत का पालन नहीं करते। गृहस्थी को भी ऋतुकाल में जाने से अतिरिक्त सब अवस्थाओं में ब्रह्मचारी रहना चाहिये। ऋतुकाल से अन्यत्र अभिगमन करने वाले अब्रह्मचारी गृहस्थी प्राजापत्य व्रत को भङ्ग करके कामवासना से अभिभूत होकर यदि सन्तान पैदा करेंगे तो उनकी सन्तानें अपने जीवन-काल में ब्रह्मचर्य

व्रत के पालन को असम्भव कहें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है।

जैसा सफल गुरुकुल-ब्रह्मचर्य-आश्रम वे चाहते थे उसके लिये आवश्यक था कि गुरुकुल में गृहस्थी ब्रह्मचारियों के सन्तान होते जिन्हें तपस्वी जीवन के लिए स्वाभाविक रुचि होती और अत एव जिन्हें किसी ऐसे सामान की आवश्यकता न होती जो तपस्वी जीवन के अनुकूल नहीं है। ऐसे सन्तानों की कमी को अनुभव करते हुवे स्वामी जी के मन में यह विचार चक्कर लगाता रहता था कि देश के साधारण लोगों के मनों में जबतक ब्रह्मचर्य-व्रत के महत्व की भावना प्रबल नहीं की जायगी तबतक गुरुकुल में ब्रह्मचर्य व्रत की अग्नि में देश की सन्तानों को तपा कर उनमें कुन्दन के समान उज्वलता पैदा नहीं की जा सकती।

स्वामी श्रद्धानन्द जी ने सन्यास आश्रम में रह कर देश के विभिन्न भागों में और विभिन्न कार्यों में भाग लिया

परन्तु साथ ही साथ देश के नवयुवकों को, बालकों और बूढ़ों को, नर और नारी को ब्रह्मचर्य-व्रत का सन्देश सर्वदा सुनाया। देश के बालक और बूढ़े तथा स्त्रियां एवं युवक विपत्तियों को सहन करने के लिए और आत्म बलिदान के लिए जितने तत्पर हुवे हैं उनको उस तत्परता को बनाने के लिए स्वामी श्रद्धानन्द की चतुर्दिक् फूंकी हुई ब्रह्मचर्य-व्रत की आग ने बड़ा भारी काम किया है। पहिले कोई कुछ भी हो किन्तु जब व्रत पालन के लिए कमर कस लेता है तब वह दिव्यता उसके शरीर से और मन से प्रकट होने लगती है जो सारे जीवन में कभी दिखाई नहीं दी।

स्वामी श्रद्धानन्द शिक्षा की सफलता ब्रह्मचर्य पालन में देखते थे, सच्चा और धार्मिक जीवन ब्रह्मचर्य-व्रत की रक्षा में देखते थे और देश का सच्चा स्वराज्य भी ब्रह्मचर्य में ही देखते थे। काम वासना पर विजय प्राप्त करने के लिए जब मनुष्य

युद्धक्षेत्र में उतरता है तो संकल्प की दृढ़ता के कारण उसमें अद्भुत पवित्र शक्ति उमड़ आती है। वह दीनों, अनाथों और दरिद्रों की रक्षा का कार्य करता है। अबलाओं पर कभी उससे कुदृष्टिपात नहीं होता। उसका जीवन तपस्वियों का जीवन बनता है। साधारण कष्ट तो उसको कष्ट ही नहीं मालूम होता। यह है सामर्थ्य ब्रह्मचर्य-व्रत में जो स्वामी श्रद्धानन्द जी के सम्पूर्ण कार्य का मूल था॥

:-शहीद श्रद्धानन्द की भावना-:

लेखक-: ब्र॰ सुधाकर जी अ॰ स्नातक

Touch my life with the magic of thy fire,
And with its burning gift of pain make it gracious,
Use this my body as a lamp to hold up in thy temple,
And let its flame burn in song through the night and throug the day,.

आज अमर शहीद श्रद्धानन्द की पुण्यस्मृति में हम उस वीर की अमर भावना की ज्योति को अपने हृदय-मन्दिर में जगमगाती देखना चाहते हैं। उस वीर ने अपने को देश के लिए, जाति के लिए, धर्म के लिए बलिदान कर दिया था। उस की बलिदान की भावना को आज हम हृदय में धारण करें। बलिदान से जीवन खिल जाता है। उनके लिये बलिदान सूखा स्वार्थत्याग नहीं था अपितु सच्चिदानन्दमय

आत्मसाक्षात्कार था। वस्तुतः बलिदान की भावना बड़ी बहुमूल्य है। बलिदान का तात्पर्य अपनी शक्ति का बलिदान नहीं है अपितु आत्मसमर्पण है। देशसेवा के लिए आत्मसमर्पण करना भी बलिदान है। देश के स्वतन्त्रता-संग्राम में बलिदान की भावना से ओत-प्रोत देशसेवक सैनिकों की आवश्यकता है। 'मुझे इस काम में मरना है यदि ईश्वर की इच्छा होगी तो वह मुझे यश देकर उससे बचा लेगा' इस भावना के सैनिकों की आवश्यकता है।

दीन, पतित और पथभ्रष्ट लोगों के लिए उस वीर ने महान त्याग और अपूर्व प्रेम का जीवन बिताया था। उसका प्रेम और त्याग का आदर्श जाति और सम्प्रदायों की चहारदिवारी को पार कर गया था। वस्तुतः बलिदान की भावना का स्रोत त्याग, सेवा, प्रेम और निरभिमान की भावना ही है। अपनी स्वार्थवृत्ति का त्याग और परार्थवृत्ति का ग्रहण ही मनुष्य को बलिदान का पाठ पढ़ाता है। दूसरों को अपना समझना, उनकी सेवा करना, उनके लिये अपने को समर्पित कर देना बलिदान का गुरुमन्त्र

है। 'वन्देमातरम्' बलिदान का मूलमन्त्र है। माता की वन्दना उसके पुत्रों- अपने भाइयों की सेवा में ही है। माता कहती है तुम मुझे अनेक नामों से पुकारते हो पर मुझे तो 'माता' यही नाम प्रिय है क्योंकि माता शब्द में मेरे बालकों का समावेश है। 'वन्देमातरम्' उस शब्द में जितनी मातृ-भक्ति है उतना ही भ्रातृप्रेम है भगिनीप्रेम है। अपने भाइयों की सेवा ही परम धर्म है। उस प्रेम शहीद का अन्त उस अद्भुत कष्ट

जाने वाले भाइयों की सेवा करते हुवे ही हुवा था। अन्त्यजों की सेवा ही आज अत्यन्त आवश्यक है। भारत की पवित्र भूमि में अन्त्यजों की सत्ता एक महान कलङ्क है। अन्त्यजों की सेवा समानता की भावना से होगी। अपने से अलग समझने की वृत्ति ने ही हमारे हृदयों को मनों को कलुषित कर दिया है। उसको मिटाइये समानता की भावना को अपने दिलों में भरिये। अन्त्यजों की सेवा अभिमान के बड़प्पन के भाव से नहीं होगी अपितु नम्रता

प्रेम और समानता के भाव
से होगी। हम को उन की
आत्मा में समा जाना होगा।
उनके हृदयों को अपने
हृदयों से मिलाना होगा।
हम को अपने ज्ञान का अपने
धन का उन निस्सहाय
गरीब अल्पज्ञों व किसानों
तक प्रसार करना होगा।
वे समाज के अंधेरे तह-
खाने में पड़े हैं। वहां
ज्ञान का, सहानुभूति का,
प्रेम का उजेला बहुत कम
पहुंचता है। उन को अपनाना
होगा। उनके दिलों से भेद-
भाव के परायेपन के तथा
कमजोरी के सपने को,

क्षुद्र अछूत समझने के
भाव को हटाना होगा।
अछूत और गांव के किसान
वे हैं जिन को हम अशिक्षित
कहते हैं। जिन्हें हम गंवार
किसान समझते हैं पोथी
के पन्नों का पर्दा भेद कर
उन तक हमारी दृष्टि नहीं
जाती। वे हमारे लिये अस्प-
ष्ट हैं। इसीलिए वे हमसे
अलग होकर स्वभावतः ही
भिन्न हो जाते हैं। समाज का
चिरबाधाग्रस्त जो नीचे
का अंश है जहां कहीं
भी सूर्य का प्रकाश पूर्ण-
रूप से नहीं पहुंचाया
जा सकता वहां कम से

कम तेल को बत्ती जलाने के लिये तो हम को तय्यार रहना चाहिये।

उस अद्वितीय कुलपति ने कुलपुत्रों को आत्मा के अमर मन का सन्देश दिया था। उसकी स्मृति कुलपुत्रों को सच्चे आत्मिक वीर बनने को प्रोत्साहित किया करती है। आत्मा के गुण हैं— साहस, धैर्य, अटूट विश्वास और सत्यप्रेम। जीवन संग्राम आत्मगुणी लोगों के लिए ही है। यहां साहस करना है विश्व के महान कार्यों में प्रवृत्त होने के लिये। यहां अटूट धैर्य धारण करना है प्रत्यक्ष आपत्तियों का स्वागत करने के लिये। यहां दृढ़ विश्वास रखना है अपनी सम्पूर्ण दैवी क्षमताओं पर। जीवन संग्राम में हम को दीपक की भांति सत्य को पकड़े रखना है। सत्य का प्रेमी वही है जो सत्य के लिये अपने को खुशी २ न्योछावर करदे। वह सत्य का प्रेमी नहीं, सत्याग्रही नहीं जो सत्य की रक्षा के लिए अपने को असमर्थ पाता हो। कुलपति की वीर भावना उसके वीरपुत्रों

के झण्डों को सदा ऊंचा
उठाये रखती थी। आज
हमें भी उसी भावना को
भरना है। आज भी वह
अमर लोक की भावना हम
को बार २ सुना २ कर कह
रही है कि 'तुम उतने ही
जवान हो जितनी तुम में
श्रद्धा है। उतने ही बूढ़े हो
जितने तुम शङ्काशील हो।

तुम उतने ही यौवनसम्पन्न
हो जितने तुम आत्मविश्वा-
सी हो। उतने ही वृद्ध हो
जितने डरपोक हो। उतने
ही जिन्दादिल हो जितने
आशावादी हो। उतने
ही मुर्दे हो जितने निराशा-
मय हो'॥

आत्म निरीक्षण

लेखक:- ब्र० वीरसेन जी.

पिछली बार दीपावलि के उत्सव पर आत्म निरीक्षण नामक एक लेख में हमने आजकल के पाठकों के सम्मुख वर्तमान गुरुकुलीय जीवन की आलोचना करने की कुछ ढिठाई की थी। आज कुल पिता श्रद्धानन्द की जयन्ती मनाते समय मेरी इच्छा है कि उसी परम्परा में मैं कुछ विचार पाठकों के सामने रक्खूं।

पिछली बार गुरुकुलीय जीवन की शिथिलता और असन्तोष का कारण बताते हुए मैंने लिखा था कि गुरुकुल के सम्मुख कोई क्रियात्मक कार्यक्रम नहीं है। किसी ऐसे आदर्श को, जिसकी महानता और उपयोगिता हमारे जीवन में प्रतिक्षण स्फूर्ति देती है, सम्मुख रखे बिना कोई भी संस्था उन्नतिशील नहीं हो सकती। यह ठीक है कि गुरुकुल की नियमावलि में इस प्रकार के ऊंचे उद्देश्य रक्खे गये हैं पर जबतक किसी संस्था के संचालकों और नीतिनिर्धारकों को उसके उद्देश्यों का कोई स्पष्ट समझ में आने लायक बोध न हो जब

पूर्ति के लिये कोई कार्यक्रम नहीं बन सकता और ऐसी अवस्थाओं में उनका विचार हमें कोई स्फूर्ति नहीं दे सकता है।

गुरुकुल के संचालकों ने उस लक्ष्य की बड़ी उपेक्षा का भाव दिखाया है। ऊंचे २ दिल लुभाने वाले आदर्शों की जिनका उन्हें ज्ञान भी कायम नहीं था उन्होंने स्थापना तो कर दी पर उन्हें समझने का कभी प्रयत्न नहीं किया। उसकी बागडोर प्रारम्भ से ही ऐसे समूहों के हाथ में पकड़ा दी गई जो कभी इस लायक हो ही नहीं सकते, कि उन आदर्शों को भलीभांति समझ सकें। वास्तव में स्वभावतः यही हुआ कि सब उपयुक्त साधनों और अवसरों के होते हुए भी गुरुकुल वह अभिलषित फल भी पैदा न कर सका जिसकी उससे आशा की जा सकती थी। वर्तमान विदेशी शिक्षा प्रणाली के विषैले प्रभाव से जाति को मुक्त कर दे। मातृभाषा में समस्त शिक्षा देना तथा राष्ट्र के सामने स्वावलम्बन और आत्मविश्वास का आदर्श रखना तथा प्राचीन भारतीय संस्कृति के

पुनरुद्धार की उच्चतम भावनाओं से प्रेरित होकर ही इस विद्यालय की स्थापना की गई थी। भारत की पुनः जागृति और नवयुग के प्रवर्तकों में सबसे प्रमुख व्यक्ति [illegible] वास्तविक भारतीय भावनाओं और आदर्शों से प्रेरित सबसे पहले और सच्चे राष्ट्रीय नेता महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के मानसपुत्र हमारे कुल पिता महात्मा मुंशीराम एक भयंकर [illegible] आदर्शवादी थे। उनकी राष्ट्रीय मौलिकता आदर्शों की ऊंची उड़ान अनुपम साहस और अद्भुत

आत्म विश्वास आज भी भारत के राष्ट्रीय नेताओं की स्पर्धा के विषय हैं। इसी महापुरुष की गम्भीर भावनाओं से प्रसूत यह छोटी सी पाठशाला समस्त भारत की आशा और महत्वाकांक्षाओं का केन्द्र थी। इसे स्थापित तो पञ्जाब की आर्य-समाज, जो कि उस समय भारत के सामाजिक जीवन की एक मात्र स्फूर्ति-दायिनी संस्था थी, ने किया था पर यह देश की आकांक्षा की ही संस्था

न थी वह हिन्दूजाति की
भी संस्था न थी; क्योंकि
इससे सीधे तौर पर हिन्दू
ही संबद्ध थे वह भी सारे
भारत की हिन्दू, मुसलमान
सिक्ख, पारसी और —
ईसाइयों की एक मात्र संस्था
उनकी आशाओं का केन्द्र —
पददलित भारत की आत्मा-
ने, जो कि बड़े दिनों से —
निरन्तर असफलता और
पराभव से अपने आप में
विश्वास करना ही छोड़ चुकी
थी, जिसे उसने गौरवमय
अतीत की कहानी एक
कल्पना, एक स्वप्न, एक पौरा-
णिक कहानी से अधिक
कुछ भी प्रतीत न होती थी,
जिसे अपनी अतुल शक्ति
पर विश्वास करना स्वयं किसी
बात के आरम्भ कर सकना
मानो आता ही न था। शिवा-
लक की तलहटी में पतितपाव-
नी गंगा की प्राचीन धारा के
तट पर एक घने जंगल में भ-
यानक हिंसजन्तुओं से घिरी
उन दो चार टूटी फूटी झोंपड़ि-
यों में जलती हुई दीपों में
आशा की एक हल्की रेखा का
आभास किया था। हजारों वर्षों
से आती हुई उस प्राचीन
वैदिक धाराओं की ज्ञानवाणी
की [illegible] प्रतिध्वनि उप

छोटे २ बच्चों की तुतलाती हुई-
कोमल भावपूर्ण सुरीली-
कण्ठ ध्वनि में सुनकर उसे
अपने पर फिर कुछ भरोसा
होने लगा। उन कुटियों की
स्थापना भारत की नवीन जा-
गृति के इतिहास में एक
क्रान्तिकारी घटना थी।
ब्रिटिश साम्राज्य भी एकबार
उससे चौंक पड़ा था। राष्ट्रीय
शिक्षा की स्थापना में आत्म-
त्याग के इस कमाल के साह-
स, कल्पना की उड़ान और
आशीर्वाद ने अपना पूरा
चमत्कार दिखाया-

सचमुच गुरुकुल यदि उनके
आप में अपने संस्थापक की
भावना को जागृत कर रख
सकता तो गुरुकुलीय जी-
वन में यह असन्तोष और
असफलता न होती। पर
गुरुकुल का प्रबन्ध जिन
लोगों के हाथ में रहा है वे
महात्मा मुंशीराम की उदात्त
भावनाओं और उड़ानों का
अनुगमन न कर सकते थे।
महात्मा मुंशीराम की भावनायें
उन लोगों की सारी उड़ानों
से परे की चीज़ थी। वे
लोग तो पंजाब के वकील

प्रकार अथवा साधारण स्थिति
के व्यक्ति किसान आदि/के
किसी नेता का अनुगमन कर
सकते हैं पर गुरुकुल जैसी
क्रान्तिकारी संस्था को चलाना
उनकी ताकत के बाहर की
बात है। यही कारण है कि
इन 37 वर्षों में गुरुकुल —
राष्ट्रीय शिक्षा की कोई स्व-
तन्त्र प्रणाली विकसित न
कर सका। गुरुकुल का
पहला कदम जितने साहस
और उत्साह से उठाया गया
था अगले कदम उस उत्साह
को कायम न रख सके।
महात्मा मुंशीराम के उत्तरा-
धिकारी उनकी ऊंचाइयों
को समझ ही न सकते थे
वे साम्प्रदायिक संकीर्णता
और दुनियादारी से रंगे
थे। उन्हें रुपये को बटोर
कर जोड़ने का ख्याल था
पर संस्था की वास्तविक उ-
न्नति की तरफ उन्होंने कभी
ध्यान नहीं दिया। रुपया
जुटाना वे जानते थे पर उसका
सदुपयोग करना उन्हें आता
ही न था। फलतः गुरुकुल के
कलेवर की खूब वृद्धि हुई पर
राष्ट्रीय शिक्षा की उन्नति न की
जा सकी। उनके विद्यावान

और शिक्षकों की संचालिता
ने उस कार्य को करने के लिये
उत्साह से भरे हुए कार्यकर्ता-
मंडल को, जो महात्मा मुंशी-
राम ने अपने चारों तरफ से
ऊंचे आदर्श से जुटा लिया
था, निकाल बाहर किया।
आदर्शवादिता की जगह
भौतिक सम्पदा ने ली।
नये परीक्षण बन्द कर दिये
गये। जिस कार्य में शक्ति
की सफलता प्राप्त होती रही-
रहा वह बन्द कर दिया गया
क्योंकि उसका स्वाभाविक
था। गुरुकुल में आदर्शवादिता
जो ऐसी संस्थाओं की पू-
रक शक्ति थी निकल गई है
बस उसका ढांचा अब तक
चला आता है। हर बात में
कालिज की नकल किसी
भी संस्था को उन्नति की ओर
नहीं ले जा सकती। वस्तुतः
देखा जाय तो गुरुकुल के पास
जितने साधन मौजूद हैं उन-
की झांकी यहां नज़र नहीं
आती। कमीशनों की उन्नति
यहां बढ़ रही है पर इनकी
अपेक्षा यदि गुरुकुल में कुछ
मौलिक परीक्षण किये जाते
तो अधिक अच्छा होता।
देश में पाकिस्तान हो या अं-
की, भारत में शिक्षा सिस्टम
(Kitchen System) हो या

गया। इन सब बातों की अपेक्षा यदि कुलवासियों का ध्यान यहां के उपाध्याय अध्यापकवर्ग को अधिकाधिक योग्य बनाने की ओर होता तो शायद यह असन्तोष की भावना तथा गुरुकुल को सरकार से मिला देने के आन्दोलन अपने आप शान्त होजाते। यहां के पुस्तकालय को इतना सम्पन्न बनाया जाता कि प्राच्य संस्कृति विषयक गवेषणाएं की जा सकें तो शायद आज गुरुकुल की बहुत सी समस्याएं हल हो जातीं। आज छोटे २ कालिजों के पास भी अनमोल पुस्तकालय मौजूद हैं। लाहौर डी.ए.वी. कालेज के पास प्राच्य पुस्तकों की हस्तलिखित पुस्तकों का एक अच्छा खासा संग्रह है। उनके पुस्तकालय में बैठकर प्राचीन भारत सम्बन्धी बहुत सी खोजें बड़ी आसानी से की जा सकती हैं और की जाती हैं। वहां संस्कृत के तुलनात्मक अध्ययन का अच्छा प्रबन्ध है। इसी प्रकार अन्य विद्यापीठों में भी इस तरह के प्रयत्न लगातार किये जाते हैं इसके विपरीत, गुरुकुल में, जो कि प्राच्य संस्कृति

और संस्कृत शिक्षा के लिये ही अपने आप को स्थापित करता है। इन बातों का सर्वथा अभाव है। यहां प्राचीन भारतीय साहित्य-संस्कृति, इतिहास आदि विषयक खोज के लिये कोई साधन मौजूद नहीं। यहां के अध्यापक बाहर के अन्वेषकों से परिचित होना चाहें तो वह भी यहां असम्भव है क्यों कि इस प्रकार के पत्र-पत्रिकाओं के मंगाने की तरफ कहीं ध्यान ही नहीं दिया जाता।

बड़ी२ इमारतों के बनाने में और ऐसे ही कई फ़ुजूल के कामों में हज़ारों रुपया लगाया जाता है। पर विश्वविद्यालय की वास्तविक शान इन बातों में नहीं है कि उस की इमारतें बड़ी२ हैं इसके पास सुन्दर२ बगीचे हैं, उस की सम्पत्ति इतनी है। पर उसकी शान इस बात में है कि उसके अध्यापक बड़े योग्य हैं, उसके पास पुस्तकों आदि का अच्छा संग्रह है उसके विद्यार्थियों की योग्यता बहुत अधिक है। पर खेद है कि इन चीज़ों की तरफ यहां बिल्कुल

ध्यान नहीं दिया जाता। गुरु-
कुल पुस्तकालय पर साल में-
सिर्फ 500) ही खर्चे जाते हैं,
जिनमें अखबार भी सम्मि-
लित हैं। पुस्तकालय में
हस्त लिखित ग्रन्थों का तो-
अभाव ही है। गुरुकुल के पह-
ले लोगों ने कुछ अत्यन्त उ-
पयोगी और अमूल्य पुस्त-
कों का संग्रह किया था-
पर इस तरफ किसी किसी
की रुचि न होने से अधि-
कांश को कीड़े खा गये हैं,
यद्यपि अब उनकी संभाल
होने लगी है।

इस प्रकार कार्यकर्ता-
ओं में आदर्शवाद न रहने
से तथा गुरुकुल की-
व्यावसायिक महत्ता की तरफ
लापरवाही होने से आज
हम देखते हैं विद्यार्थियों के
जीवन में भी अकर्मण्यता
घर करती जाती है। साथ
ही कुछ वर्षों से हमारे-
जीवन का सम्बन्ध प्रकृ-
ति से भी छूटता जाता है।
खेल, कूद और पर्वत भ्रमण
व नदियों में तैरना तथा
अन्य साहस पूर्ण कार्य-
क्रमों अब हमारे विनोद
के विषय नहीं रहे। न
ऊपर के अधिकारी वर्ग
को ही इस बात का शौक
है। इस बार गुरुकुल

स्वयं प्रकृति की गोद में था
अतः उस सम्बन्ध को बना-
ये रखने के लिये विशेष
यत्न की ज़रूरत न थी पर
अब जब गुरुकुल प्रकृति
माता की गोद से अलग
होकर इस पार आ बसा
है उस पुरानी भावना को
कायम रखने की ओर
अधिकारियों को विशेष
यत्नवान होना चाहिये
था। पर इस तरफ उपेक्षा
दिखाई जा रही है। सहज
सहज की मात्रा दिनोंदिन
कम होती जाती है। इस
प्रकार उद्देश्यहीनता और
आरामतलबी दोनों मिल-
कर हमारे असन्तोष को
अधिक बढ़ा देती हैं।
उपाध्यायों में किसी का
जीवन और विचार इतने
ऊंचे नहीं कि वह विद्या-
र्थियों में कोई रूह फूंक
सकें। विशेषकर प्रता-
भ्यास की नई प्रणाली ने
तो गुरु शिष्य का रहा
सहा सम्बन्ध भी समाप्त
सा कर दिया है। उधर
अधिकारी यह समझते हैं
कि Routine को पाल
न करा लेने से ही उनका
कार्य पूरा होगया।

विद्यार्थी भी जैसे तैसे अधिक
अङ्क प्राप्त करके अपने-
आपको सन्तुष्ट कर लेते हैं।
परन्तु अध्यापक और विद्या-
र्थी में कोई पारस्परिक-
आन्तरिक सम्बन्ध स्थापित
नहीं होने पाता उनके आ-
चार विचार के नियन्त्रण
करने में ऊपर से कोई सला-
ह देने वाला नहीं। उनमें
अन्तर्निहित शक्तियों का
विकास करने का कोई प्रयत्न
अन्दर से नहीं होता। अध्या-
पकों और विद्यार्थियों की
आन्तरिक पवित्रता का
कोई अवसर ही नहीं आता

महाविद्यालय की ला-
भ उठा सकते और वाद-
विवादों में मुश्किल से ही
कोई भाग लेता है। कि
में भाग लेना तो
अध्यापकों की शान के
खिलाफ ही है। इन
सब बातों का जो असर
विद्यार्थियों के जीवन
पर पड़ता है वह स्पष्ट
ही है।

यह बात हमें
ध्यान रखनी चाहिये कि
योग्य पढ़ाने वालों की
उपस्थिति में किसी भी
विद्यालय में असन्तोष
हो ही नहीं सकता।

यदि लड़कों में किसी उच्च आदर्श की भावना भर दी जाय उनके सामने कोई सक्रिय कार्यक्रम रक्खा जा सके तो हो ही नहीं सकता कि लड़कों में असन्तोष की भावना मौजूद रह सके। यदि पढ़ाने वाले अपने जीवन से और साथ ही साथ अपनी योग्यता से लड़कों में उन आदर्शों को भरें तो हो ही नहीं सकता कि लड़कों को भविष्य जीवन के सम्बन्ध में निराशा के भाव घेर सकें। आशावाद और आदर्शवाद साथ २ चलते हैं जहां निराशा है वहां आदर्श हीनता है। जहां अयोग्यता है वहां निराशा रह सकती है। जो उपाध्याय के विद्यार्थी कभी निराशावादी हो ही नहीं सकते उनके उपाध्याय की योग्यता उन्हें इतना प्रभावित किये रक्खेगी कि उन्हें निराशा छू भी नहीं सकती। नवयुवकों को भो-थली बातें कभी प्रभावित नहीं कर सकतीं।

में आदर्श नागरिकता की
भावनाओं को जगाने में
प्रयत्न किया जाय। पर
यह प्रयत्न विद्यार्थियों के
प्रश्न को प्रदीप्त किये बिना
भी सफल नहीं होगा।
साथ ही उनके आमोद प्र-
मोद में भाग लेना भी
उनके अधिकारियों के
लिये आवश्यक है। इसके
सिवाय इस दिशा में किये
गये सब प्रयत्न सदा
निष्फल होंगे।

इसलिये आजकल इस
सबसे आवश्यक बात यह
है गुरुकुल जैसी शिक्षा
संस्थाओं का संचालन शि-
क्षाविदों के ही हाथ में हो-
ना चाहिये। किसी प्रकार
के साम्प्रदायिक संघ का
इसकी नीति निर्धारण में
प्रमुख होना बड़ा ही घात-
क है। खासकर शिक्षा के
मामलों में साम्प्रदायिक-
ता का आना बुरी चीज है।
बिना इसके मिटे कोई भी
सुधार होना असम्भव है।
मेरी इच्छा वर्तमान शिक्षा प्र-
णाली की आलोचना करने
की भी थी पर किसी
अन्य अवसर के लिये छोड़
दी गई है। आशा है पाठक
मेरी इस धृष्टता को क्षमा
करेंगे।

स्नेहमूर्ति श्रद्धानन्द

लेखक — ब्र० विनोद चन्द्र जी

इस शान्त समय में मेरे विचार उस काल की यात्रा में तल्लीन हैं जिसका सम्बन्ध अतीत काल से है। वह समय अत्यन्त सुन्दर था। अनुभवहीन हमारे हृदयों ने मातृ निर्विशेष स्नेह का अनुभव किया था। उस समय हम स्नेह की परिभाषा करना न जानते थे। स्नेह हमारे लिये अप्राप्य वस्तु न थी। स्नेह की परिभाषा हमारे लिये "न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते" के अतिरिक्त कुछ न थी। उस समय हमसे अत्यन्त स्नेह करने वाला एक व्यक्ति था। उस व्यक्ति ने हमारे नन्हे हृदयों को अपनी मुट्ठी में कर लिया था। हमारी भ[illegible] पस आँखें अनायास ही उसकी तरफ आकृष्ट हो गई थी। उसे हम 'कुलपिता' कहते थे; वह सच्चे अर्थों में 'कुलपिता' था। उसके हृदय में अपने कुलपुत्रों के लिये इतना अधिक स्नेह था कि उनके ज़रा से भी दुःख को देखकर वह आँसू बहाता था और उसे यथाशक्ति दूर करने की चेष्टा करता था।

उसे मूसलाधार वर्षा के अन्दर अँधेरी रात में हाथ में दण्ड लेकर फिरते हुए भी लोगों ने देखा है; लोगों ने देखा है कि वह ठिठुरता हुआ अन्दर अपने कुलपुत्रों

आज कल

ये कम्बल, रजाई इत्यादि डाला करता था। रात में गोद में लेकर चिकित्सालय की तरफ अपने अनेक कुलपुत्रों को लेजाते हुए भी लोगों ने अच्छी तरह देखा है। अपने बच्चों को कांटा लगा देखकर वह कुलपिता अपने हाथों से ही उनके कांटे निकाला करता था। देखने वालों के लिये यह दृश्य सचमुच स्वर्गीय था। माता [illegible] तथा पिता के स्नेह से सर्वथा अपरिचित बच्चों के लिये यह स्नेह का प्रथम "पदार्थ-पाठ" था। इस प्रथम "पदार्थ पाठ" में उनके लिये स्नेह की परिभाषा करना आवश्यक न था।* इस "पदार्थ-पाठ" का आदि शिक्षक स्नेह मूर्ति कुलपिता श्रद्धानन्द था।

हमारे हृदय आज भी उसी स्नेह से भरे हैं। हमारी आंखें आज भी उसकी मूर्ति दर्शन करना चाहती हैं। किन्तु आज हम उसकी स्नेह मूर्ति केवल स्मृति द्वारा ही सं-धार कर सकते हैं।

मुझे अच्छी तरह से याद है कि एकबार बातचीत के सिलसिले में एक सम्माननीय व्यक्ति ने मुझे यह बतलाया था कि, "हमारे कुलपिता" सदा यही चेष्टा करते थे कि गुरुकुल जन्मोत्सव पर सभा की द्वितीय बैठक से पूर्व ही सब शिकायतें रफा हो जावें। एकबार वे सब ब्रह्मचारियों के मध्य में जाकर बैठ गये और उनसे कहा कि अच्छा अब शिकायतें सुनाओ। एक ने खड़े होकर कहा कि "हमको इस महीने फल नहीं मिले"। कुलपिता ने आंखों में आंसू भरकर उत्तर दिया कि प्यारो! मुझे दुःख है कि मैं तुम्हें तुम्हारे लिये फलों का प्रबन्ध न कर सका। अब की बार मेरे प्रबन्ध में इतनी बुरी भ

रख दी। इस बार मैं तुम्हें खूब फल खिलाऊँगा। बताने वाले बताते हैं कि उस समय सब को यही अनुभव हुआ था कि हमें फल मिल गये। सच्चा स्नेह क्या नहीं कर सकता? उस स्नेह मूर्ति श्रद्धानन्द की यदि कोई कलाकार बनाकर ठीक वही बच्चों के सामने फल खिलाने की प्रतिज्ञा करने वाली मूर्ति बना सके तो आज हम भी हमारे समझदार हृदय उस मूर्ति के सामने कोई शिकायत कर ही देंगे। हमारे हृदय अवश्य ही उस मूर्ति के सामने झुक जायेंगे। स्वतः संकोच छोड़ कर अपने हृदय उसके सामने खोल देंगे।

जब जब मैं उस पिता के विषय में सोचता हूँ मेरे सामने वह स्नेह मूर्ति के रूप में विराजमान होता है। मैं उसे दलित जातियों से प्रेम करते हुआ देखता हूँ। अछूतों को गले लगाता हुआ पाता हूँ। हतभाग्य भारतवर्ष के लिये उसे आँसू बहाते हुए भी मैं अनेक बार देख चुका हूँ।

अभागा भारतवर्ष अभी श्रद्धानन्द को अब भी नहीं समझ सका। वह उसे साम्प्रदायिक नेता के रूप मे देख कर उस के उज्ज्वल यश को मिटाना चाहता है। श्रद्धानन्द हमारा नहीं, भारतवर्ष का नहीं अपितु संसार का था। आगे आने वाली सन्तानें जब अपने पुनरुत्थान के इतिहास की छानबीन करेंगी तो स्नेह मूर्ति श्रद्धानन्द का नाम स्वर्णाक्षरों मे लिखा पायेंगी।

अय अभागे भारतवर्ष! तू उठ तेरे पददलित पुत्रों की अस्तित्व की रक्षा के लिये प्राण देने वाले श्रद्धानन्द को

पहचान और प्रसन्नमय हृदय से उस प्रभु ~~की स्मृति के आनन्द~~ नन्दकी स्मृति को सर्वदा जाग्रत रख कर अपना उद्धार कर।

: ———— ० ———— :

शुद्धि.

लेखक - पं इन्द्र सेन जी.

आज जैसे दिन हमारे लिये महत्व पूर्ण सन्देश लेकर आते हैं। हमें अपने कर्तव्य पथ पर चलने के लिये प्रोत्साहित करने आते हैं। आज एक दिव्य आत्मा ने सचाई के लिये अपनी बलि दी थी। उसका जीवन परोपकार का जीता जागता उदाहरण था।

उसने अपने देश तथा देशवासियों के लिये जो भी कार्य उचित समझा उसी के लिये जी जान से कोशिश की। उसके क्रियात्मक जीवन पर दृष्टि डालिये:- ब्रह्मचर्य के लिये, जातपात तोड़ने के लिये; शुद्धि के लिये, दलितों के उद्धार के लिये इत्यादि २ अनेकों कार्यों के लिये वह आजीवन प्रयत्न शील रहा।

मुझे याद है वह दिन जब हिन्दू उसकी अर्थी के साथ २ ज़ोर से गाते हुए देहली के बाज़ारों में से गुज़रे थे। वह जोश - "मक़तलों से होगी कभी बन्द शुद्धि, हमें बच्चा २ कटाना पड़ेगा"।

उसने अपनी बलि शुद्धि के लिये कर दी। शुद्धि का आप क्या अर्थ समझते हैं? क्या- कि हवन कुण्ड के सामने अछूतों को स्नान कराकर बिठा दीजिये और हवन के मन्त्र पढ़ कर फिर उनसे कुछ मिष्टान्न बँटवा दीजिये। नहीं! इसका नाम शुद्धि नहीं है। कइयों का विचार है कि शुद्धि तभी हो सकती है जबकि अछूत अपने कर्म पवित्र करें। चालचलन सुधारें। नहीं ऐसी बातें ढकोसले हैं। मुझे इस समय के मुन्शी प्रेमचन्द की पं. लीलाधर वाली गल्प के कुछ वाक्य स्मरण हो आते हैं -। उसमें पं. लीलाधर अछूतों को उपदेश दे रहे हैं कि हे अछूतो तुम उन्हीं महर्षियों की सन्तान हो कि जिनकी हम हैं। तुम्हारी धमनियों में उन्हीं का रक्त जोश मार रहा है। इतने में एक बूढ़ा अछूत उठकर सवाल करता है कि अगर हममें उन्हीं का रक्त है तो क्या आप हमारे साथ रोटी खाने को तैय्यार हो। पं लीलाधर दबी ज़बान से कहते हैं, हाँ इसमें मुझे कोई उज़्र नहीं है। इसके बाद बूढ़ा फिर सवाल पेश करता है कि क्या आप विवाह सम्बन्ध करने को तैय्यार हैं? लीलाधर कहते हैं - इसके लिये अभी आप को अपना व्यवहार ठीक करना होगा। चाल चलन। अच्छा बनाना पड़ेगा। जवाब में बूढ़ा कहता है - हमें ऊँचा उठना नहीं आता, हम जैसे हैं, अच्छे हैं। मुसलमान भाई हमें इसी हालत में अपने साथ मिलाने को तैय्यार हैं। आप अपने उच्च व्यवहार का ढोंग करते हैं। माँस खाने वाले अंग्रेजों के साथ रोज़ हाथ मिलाते हैं। उनके नाचघरों में जाते हैं।

आज कल

शराब पीते हैं। सब गरे इस्तेमाल करते हैं। हममें इनमें से एक भी बुराई नहीं है।

कहने का सारांश यह है कि शुद्धि तब तक कोई अर्थ नहीं रखती जब-तक कि हिन्दू समाज इन नाम के अछूतों के साथ विवाह और खानपान के सम्बन्ध को स्थापित नहीं करता। जातपात का भूत हमारे साथ इतना लगा हुआ है कि हम इससे क्षणमात्र के लिये भी बरी नहीं हो सकते। पंजाब में जहाँ भी आर्य-समाज का सबसे अधिक जोर है, वहीं के प्रख्यात पत्र Tribune को ले लीजिये। हर एक Matri monial के इश्तहार में जात जरूर लिखी होती है। Advertisement अगर किसी कट्टर आर्यसमाजी का होगा तो वह जात लिखने ~~के बाद~~ देने के बाद इतना और बढ़ा देगा कि Without any caste distinction. जब तक कि हम में जात का एक Superstitious ideas Superstitious idea मौजूद है तब तक हमारी उन्नति होनी बहुत मुश्किल है। यहाँ पर मेरा जातपात तोड़ने से यह अभिप्राय नहीं है कि आप जातपात तोड़कर कन्या का Worth भी लेवें। नहीं, हमें रोज देखने में यह आता है कि जातपात तोड़ने से कन्या अधिक योग्य प्राप्त होती है और इसी प्रकार से कन्याओं को भी वर अधिक योग्य प्राप्त होते हैं। अधिक योग्य प्राप्त होने का कारण choice का field बढ़ जाता है।

इस अवसर पर मैं प्रत्येक कुल-वासी का ध्यान इस महत्त्वपूर्ण विषय की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ और स्पष्ट शब्दों में कहना चाहता कि शुद्धि का वास्तविक उद्देश्य तभी पूरा होगा जबकि सर्वसाधारण के दिलों से यह जातपात का पक्ष-पात दूर हो जायगा। उस उद्देश्य स्वामी की आत्मा को भी तभी पूर्ण शान्तिप्राप्ति होगी जबकि आप दलितों का उद्धार, और अछूतों की शुद्धि अपने साथ उन्हें मिलाकर सच्चे अर्थों में कर दिखा-येंगे।

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी.

लेखक-: श्री नरदेव जी शास्त्री वेद तीर्थ.

स्वामी श्रद्धानन्दजी में वैसे तो अनेक गुण थे जिन के कारण उन की ख्याति हुई पर सब से श्रेष्ठ गुण था उद्देश्य-प्रियता। इस उद्देश्य प्रियता के कारण उन्होंने अपने जीवनकाल में अनेक कष्ट उठाए पर अपनी उद्देश्य प्रियता को नहीं छोड़ा। उद्देश्य प्रियता के लिए ही उन्होंने अपना सब कुछ " जनतायै स्वाहा इदं जनतायै इदं न मम " कह कर आहुति दे दी। दूसरा गुण निर्भयता है, एक बार जहां के उद्दिष्ट स्थल की ओर चल दिये फिर वह संकटों से कभी नहीं डरते थे, अपने मार्ग में अग्रसर होने पर उन को अपने इष्ट से इष्ट जन को भी छोड़ने का अवसर आया तब तनिक भी विचलित नहीं हुए। तीसरा गुण उदारता, इस गुण की तो उन के शत्रु भी सहस्र मुख से प्रशंसा करते हैं- एक बार जिस को अपना कहा

उस के लिए मर मिटे। सार्वजनिक जीवन में भी सैंकड़ों बार कभी स्वजनों से और कभी परजनों से विरोध हुआ सही, पर वे उन से लड़ते समय खूब लड़ते थे और जहां लड़ाई समाप्त हुई नहीं कि पुनः वही सौम्यरूप, फिर वही मित्रता — सार्वजनिक जीवन में अग्रसर होने में इस गुण ने भी अधिक सहायता पहुंचायी। स्वामी श्रद्धानन्द जी पुण्य-प्रतापी पुरुष थे। जिस काम में हाथ डाला उसी में यशस्वी हुए और "यशः पुण्यैरवाप्यते" अथवा "पुण्यैर्यशो-लभ्यते इस लोकोक्ति को अक्षरशः चरितार्थ कर के दिखला दिया। उन का अदम्य उत्साह, लोक-संग्रह की अद्भुत रीति-नीति उन का दाक्षिण्य आदि, किस किस गुण का वर्णन किया जाय। उन्होंने अपने जीवन काल में जनतात्मा की जितनी सेवा की उस से, वे स्वयं सन्तुष्ट थे कि नहीं; नहीं कह सकते पर इतना अवश्य कह सकते हैं कि उन की सेवा से जनतात्मा परम सन्तुष्ट थी और जब जनतात्मा सन्तुष्ट थी तो परमात्मा भी क्यों अप्रसन्न रहते — उन को अपने पास बुला लिया तो ऐसे ढंग से बुला लिया कि जिस पद के लिये बड़े से बड़े भी लालायित रहते हैं।

आज कल

हम दोनों एक जगह के ही रहने वाले थे और एक स्कूल में पढ़ते थे। बचपन का साथ था। कभी अलग होने को जी न चाहता था। उस समय हम एक ही कॉलिज में साथ ही साथ पढ़ते थे। मुझे अच्छी तरह से याद है उस वक्त वह खुला खेल में भी लगाता था व बहुत पढ़ने में पर उपन्यास पढ़ने का उसे बहुत शौक था। कॉलिज लाइब्रेरी में ऐसा कोई उपन्यास न होगा जो उसने न पढ़ा हो। वह कहता था कि किसी दिन मैं भी प्रसिद्ध उपन्यासकार बन जाऊंगा। वह कभी कभी कविता भी करता था। जब हम दोनों अपने कमरे में साथ बैठे होते थे तो वह अपनी चिरकालिक आशाओं को एक एक करके बाहर निकालता। वह कहता — "कि विलायत जाकर मैं डॉक्टर की उपाधि लाऊंगा और यहां साहित्याचार्य हो जाऊंगा और फिर कहीं प्रोफेसर बन जाऊंगा फिर कहता — नहीं इनमें कुछ ज्यादा लाभ नहीं। ऐसी तरकीब करनी चाहिए भारत का नेता बन जाऊं अतः विलायत जाकर बैरिस्टर बनूंगा फिर कुछ समय बैरिस्टरी करके खूब रुपया जमा देश का काम शुरू कर दूंगा। देखो न, सभी लीडर वकील हैं।

इसी तरह बैठा वह अपने भविष्य के कार्यक्रम को बांधता रहता था। पर कौन जानता कि दैव उससे विमुख है। उसके रास्ते में इस दुनिया और उज्वल भविष्य का कुछ भी मूल्य नहीं। वह अपने एक ही झटके से तो बनाई सभी आशा शृंखला को तोड़ सकता है।

कॉलिज के दो साल तो हमारे भली तरह गुज़र गये पर तीसरे साल उसे [illegible] रोग का दौरा आया यद्यपि उस रोग के चिह्न तो बहुत पहिले ही प्रकट हो गये थे और कुछ उसने अपना भयंकर रूप भी धारण कर लिया था, पर अब तो यह अपने पूरे जोरों

पर था। इलाज पहिले से होता रहा था पर उसका कुछ नतीजा ही न हुआ। हाँ इतना जरूर हुआ रोग ज्यादा न बढ़ने पाया। पर उसकी आशाओं की लहराती हुई खेती को जलाने के लिये इतना ही रोग रूपी पाला काफी था।

इसी समय से उसका जीवन बिल्कुल बदल गया। उसका वह खिलता हुआ चेहरा मुरझा गया, अब उसमें वह चमक और जगमगाहट न रही जो आज से कुछ पहिले थी। उसको एक क्षण भी चिन्ता ने घेर लिया चाहे वह कितनी ही प्रसन्नता होने की कोशिश करता पर वह पूर्व की सी छटा उसके मुंह पर आती ही न थी। स्वास्थ्य तो उसका बिल्कुल ही गिर गया था। जो देखता यही कहता — क्यों मदन, (उसका यही नाम था) तुम्हारा स्वास्थ्य इतना गिरा हुआ है। चेहरा बिल्कुल फीका सा पड़ा हुआ है क्या बात है? उत्तर वह भी रूखी हँसी हँस कर बात को टाल देता था। पर वास्तविक कारण को तो मेरे सिवाय उस समय शायद कोई भी न जानता था पर पीछे से जाकर सब को मालूम पड़ गया। मनुष्य मित्र के सामने अपने हृदय को खोलकर रख देता है क्योंकि उसके सामने किसी प्रकार की झिझक नहीं रहती। वह उन बातों को भी - जिनको वह सारे सम्बन्धियों के सामने भी कहते हुए शर्माता है, मित्र के सामने ऐसे खोल देता है जैसे सूर्योदय पर कमल अपनी पंखड़ियों को। इसीलिये मेरे और उसके बीच किसी बात का छिपाव न था। अब वह न किसी कॉलिज की सभा में ज्यादा

आज कल

भाग ही लेता था न बोलता था यद्यपि उत्तम वक्ता बनना भी उसकी एक आशा थी पर वह ज्यों की त्यों रह गई। मैं उसे हमेशा समझाता रहता था पर मेरा सारा परिश्रम नदी के प्रवाह में तिनके की तरह बह जाता था। उसकी यह दशा देखकर मुझे भी बहुत कष्ट होता था पर इसका कोई उपाय भी तो न था।

× × ×

3.

शाम का समय था। हरी २ घास पर सूर्य की सुनहरी किरणें लुढ़क रही थी आकाश में कहीं २ बादलों के मनमोहक अंक भी चित्रकारी कर रहे थे। अभी वर्षा होकर ही चुकी थी। पत्तों पर, घास पर जलकण मोतियों से चमक रहे थे। इस समय मैं और मदन अपने कमरे में ही बैठे २ कोई कविता की किताब पढ़ रहे थे। प्रस्तुत कविता का विषय "प्रकृति" ही था। वह उसकी एक एक लाइन को पढ़ता और उसकी फिर खूब व्याख्या करता। इस समय वह कविता में ऐसा तल्लीन था जैसा बच्चा अपने खिलौने में, और उसकी आंखें स्थिर और शान्त थी जैसे कि मद्य से भीगे हुए पक्षी की।

उस समय की उसकी मूर्ति रह रह कर मेरे सामने आजाती है पर आज वह गाना और झूमना इस समय अतीत के विषय हो चुके हैं, आज इसी समय इस कमरे की पिछली खिड़की की तरफ एक बड़ी सिसकीली आवाज़ सी हुई। उसका पीयरा और झुर्रीदार मुंह, उसकी अन्दर धंसी हुई आंखें और जीर्ण-शीर्ण तन मे एक दया-को अनिवार्य ही पैदा कर रहे थे। उसका थर थर कांपता हुआ शरीर-

जरावस्था को उठाने में असमर्थ सा
प्रतीत हो रहा था। ओंठों से उसने
हमारे सामने हाथ पसार कर और
रुंधी हुई आवाज़ में कहा - बेटा!
"एक पैसा दे दे मैं दो दिन से
भूखी हूँ तिसपर यह बुढ़ापा और
भी सता रहा है, जरा रहम कर"
इतना कहते २ उसका दम चढ़ गया
और उसने कुछ देर रुककर फिर
कुछ गुनगुनाना शुरू किया "अरे
किसे मालूम था इस जिन्दगी में
ये दिन भी देखने पड़ेंगे, क्या मालूम
था कि दर-दर भटकना पड़ेगा,
और वह मेरा हाथी सा झूमता
बेटा होता तो ये दिन क्यों देखने
पड़ते"।

हमने बड़ी उत्सुकता से
पूछा कि "बुढ़िया! तू गुनगुना
क्या रही है"। वह एकदम चौंक सी
गई जैसे किसी विचार में मग्न हो और
निराशा के साथ बोली - "अरे बेटा,
मेरा हाल जानकर तुम क्या करोगे,
मेरे जैसे कितनी दुखिया इस संसार
में फिर रहे हैं। तुम्हारा दिल मैं दुःखा-
ना नहीं चाहती। बस तुम मुझे एक
पैसा दे दो ईश्वर तुम्हें खुश रखे"
यह सुन मैं कोट की जेब से पैसा
निकालने लगा पर मदन ने फिर
पूछा - "नहीं बुढ़िया बता तो क्या
बात है।" यह कह वह अपने हाथ
की किताब को मेज़ पर रख बड़े
ध्यान से उस बुढ़िया के मुँह की ओर
देखने लगा। वह बोली - "क्या
कहूँ मेरे भी तुम्हारे जैसा एक बेटा था"
मैं इस समय मदन के चेहरे के उतार

आज कल

युवक को बड़े ध्यान से देख रहा था वह बोला हाँ, तो बुढ़िया ने अपना कहना जारी रखा- "उसकी उठती जवानी को देख मुझे यह बुढ़ापा भी बड़ा प्यारा मालूम पड़ रहा था। उसका पिता उसे छोटी उम्र में ही छोड़कर चल बसा था। अतएव मैं ही अकेली उसकी माता भी थी और बाप भी" इतना कहते २ उसकी धंसी हुई आँखें एक चमक सी गई और उसके मनोभाव चेहरे से स्पष्ट हो उठे। वह एक ही सांस में उपरोक्त बातें कह गई फिर संभलकर वह बोली "इसी जवानी में उसे ----- इस रोग ने आ दबाया" — इस समय उसकी आवाज़ जरा तीव्र हो गई थी। युवक रोगका नाम सुनते एक दम घबरा गया क्योंकि उसे भी यही रोग था। समान परिस्थितियों में पड़े हुए आदमियों की सदा एक दूसरे के प्रति सहानुभूति होती जाती है। अपने रोग की याद आते ही युवक के नयनों में पहले भावी जीवन की एक भयंकर दिखाई दी और फिर बड़ी निराशा का साम्राज्य। उसी समय उसकी आँखों से दो आँसू टपक पड़े। उसने बड़ी उत्सुकता से पूछा तो फिर उसका इलाज नहीं किया? "इलाज क्यों नहीं किया-बेटा, अपना सारा रुपया पानी की तरह बहा दिया-" बुढ़िया ने बड़े दुःख से कहा "पर वह मुझ अभागिन से तो मुंह मोड़ बैठा था। रात-दिन मैं उसके सिरहाने बैठी रहती थी। वह-कहता कि माँ अब मैं नहीं बचूंगा-

क्यों फिजूल इन झंझटों में जेबें भरते हो। मैं तो रोज २ कहती नहीं बेटा तू मस्त मदद हो जायगा। पर हुआ वही जो होना था - "लड़का चल बसा" यह कहकर बुढ़िया बिलख २ कर रोने लगी।

यह देख मदन के मनोभाव, जो कि उसके पहिले शान्त से थे, सताये हुए मकड़ी के छत्ते के समान भनभना उठे। उसका चेहरा उतर गया और आँखों से स्वच्छ आंसू टपकने लगे। इस करुण दृश्य को देखकर मेरा मन भी शान्त न रह सका - उसमें एक उथल-पुथल सा मच गई। मदन ने मेरे हाथ से पैसे लेकर उस बुढ़िया को दे दिये। वह बेचारी चुपचाप आशीर्वाद सी देती चली गई।

मैंने फिर मदन से वही कविता पूरी करने को कहा पर उसको तो इस हालत की चिन्ता न थी। शायद उसे यहाँ तो याद रहा था कि इस लोक में भी बुढ़िया के बेटे की तरह छुटकारा न पा सकूंगा। वास्तव में यह रोग भी बड़ा ही टेढ़ा था। रह रहकर उसके मुंह पर गहरी चिन्ता के भाव निराशा के चिन्हों की तरह अंकित हो रहे थे।

हम इसी तरह कमरे में बैठे २ बड़ी देर हो गई। इतने में खाने का समय भी हो गया, पर वह मेरे बहुत कहने पर भी उस दिन खाने नहीं गया। उस घटना का उस पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसके जीवन में सरलता का नाम भी न रहा और चेहरे पर उदासी सी छा गई। अब वह पहले से भी ज्यादा चुप रहने लगा -

कौन जानता था कि ये उसकी भावी घटना के सूचक चिह्न थे।

× × ×

४

सरदियों के दिन थे। सारे होस्टल के लड़के दस बजे तक सो चुके थे। अपने लिहाफ़ों में सब ऐसे दुबके पड़े थे ज्यों चिड़िये अपने घोंसलों में। तमोमयी रात ने तम का एक ऐसा परदा सा डाला हुआ था कि हाथ को हाथ न सूझता था। मैं करीब रात के एक बजे पेशाब के लिये उठा। उस निविड़ अन्धकार को देख कर ज्योंही मैंने अपनी मेज़ के ऊपर का बिजली का लैम्प जलाया। अचानक मेरी दृष्टि मदन के बिछौने पर पड़ी तो कलेजा धक् सा रह गया; वह खाली था। मैं जहां जैसे खड़ा था वैसे ही खड़ा रह गया मानो लकवा मार गया हो। इस आकस्मिक घटना को देख मेरा तो पेशाब भी बन्द हो गया। मैं सोचने लगा - उसकी एक २ बात से निराशा टपकती थी। बीसियों बार उसने कहा था कि इस जीवन से मरना अच्छा है। क्योंकि घटना के बाद से तो उसका यह विचार और भी दृढ़ हो गया था। क्या मालूम था कि उस घटना का ऐसा घातक प्रभाव होगा। कहीं वह अपने आप को ...... इस विचार के आते ही मेरा शरीर थर-थर कांपने लगा और एक २ रोम किसी अज्ञात भय से खड़ा हो गया। मैं अपने बिस्तर पर बैठ गया। यह सब एक मिनट में ही हो गया, कहने में तो ज़रा -

आज कल

देर लगती है पढ़ने में बहुत कम।
कुछ देर बाद मैं अपने बिस्तर से
उठा और अपने कमरे के लड़के को
जगाया। मैं कुछ हड़बड़ाया-सा था
एक दम मैंने उसे हिलाया वह भी -
हड़बड़ाकर उठ बैठा - मैंने कहा -
"मदन न मालूम कहाँ चला गया?"
वह बड़े आश्चर्य से बोला - "अरे यार!
तुम भी वहमी हो गया कहाँ होगा यहीं
पेशाब चला गया होगा" "पेशाब
गया होता तो अभी तक आ जाता" मैंने
बड़ी निराशा से कहा। हरि (लड़के का
नाम) बोला "तो क्या वह बहुत देर से
नहीं है?" "हाँ, जब से मैं उठा हूँ
तब से तो मैंने उसे देखा नहीं पर
मुझे उठे काफी देर हो गई है।"

अब तो हरि को कुछ शंका हुई।
इतने में हमारे कमरे का तीसरा लड़का
भी जाग गया, बोला - "क्या बात है,
क्या फिर तुम्हारी पढ़ाई जारी हो गई?"
"नहीं, हम मदन को ढूंढ रहे हैं न
मालूम वह कहाँ चला गया" हरि
ने जवाब दिया। "मैं तो बहुत दिनों
से ताड़ गया था कि वह एक दिन जरूर
ऐसा ही कोई न कोई काम करेगा"
लड़के ने कहा।

अब तीनों की सलाह हुई कि
अपने अध्यक्ष से यह बात कही जाए
हम तीनों उनके कमरे में पहुँचे,
उन्हें जगाकर सारा किस्सा कह दिया
वे घबराये हुए हमारे साथ उठकर
हमारे कमरे में आए। इस घटनाचक्र
को देखकर कुछ लड़के और जाग गए।
सब में कानाफूसी होने लगी। थोड़ी देर
में प्रायः सारी कॉलिज जाग उठी

आज कल

वह अच्छी तरह से अनुभव कर सकता है जिसका एक ही साथी हो और वह भी उससे अलग हो जाए।

इसी समय सहसा मेरी दृष्टि किताब के नीचे दबे एक कागज पर पड़ी, वह आधा किताब से बाहर था और आधा उसके नीचे दबा हुआ। मैंने उसे बाहर खींच लिया। उस पर कुछ मेरे ही हाथ के लिखे हुए अक्षर मालूम पड़े। इस समय मैं दुःख से पागल सा हो रहा था और मेरी आँखें डबडबाई हुई थीं इसलिए पहिले तो उसे पढ़ न सका। फिर अपनी आँखों को पोंछना पड़ा — उसमें लिखा था — "प्यारे मोहन! मुझे अब तुम विदा दो, मैं जो कुछ करने जा रहा हूँ उसके लिये मैं लाचार हूँ अपनी लाचारी को मैं ही समझता हूं। मुझे ढूंढने का व्यर्थ प्रयत्न न किया जाए। तुमसे बिना पूछे कार्य करने का यह पहिला ही अवसर है पर क्या करता यह कार्य ही ऐसा है। हमारे बीच जो एक अटूट सम्बन्ध स्थापित हो गया था वह अब भी नहीं टूटा और न कभी टूटेगा। मेरी सबको प्रणाम कहना।" मैं यह सारा फटपट पढ़ गया पर कुछ समझ न आया, क्योंकि दिमाग ठिकाने न था। बार बार आँखों के सामने अंधेरों का परदा-सा आ जाता था। मैंने उसे फिर पढ़ा। एक-एक अक्षर पढ़ता जाता था और आँखों को पोंछता जाता था। मैंने यह पत्र किसी और को दिखलाना व्यर्थ समझा क्योंकि जो होना था वह तो हो चुका।

:- कुलपिता की याद -:

लेखक - ब्र शिव कुमार जी

एक वर्ष के बाद हम फिर अपने कुलपिता के बलिदान दिवस को मनाने जारहे हैं। भविष्य के गर्भ में इस प्रकार के असंख्य दिवस विद्यमान हैं उनमें हम आपने कुलपिता को किस प्रकार याद किया करेंगे, यह तो आगे देखा जायगा, किन्तु वर्तमान समय में तो वे हमें रह रह कर याद आते हैं।

सम्पूर्ण भारत में इस समय आग लगी हुई है। स्वतन्त्रता। स्वतन्त्रता। की आवाज चारों ओर से सुनाई पड़ रही है। स्वतन्त्रता का संग्राम भी अजीब है। एक तरफ तो सारी सेना अस्त्र शस्त्र से लैस है, दूसरी तरफ की सेना कटिबद्ध निहत्थी उसके हाथ में एक भी औजार नहीं। परन्तु युद्ध फिर भी जारी है। दोनों सेनाएं बराबर एक दूसरे

का सामना कर रही है। एक ओर के सैनिक-तोपें चलाते हैं तो दूसरे खुशी २ अपना सिर आगे कर देते हैं, इस पर भी विजय की आशा इन्हीं को है। प्राकृतिक नियम फेल हो जाते हैं, अकल चकरा जाती है। आखिर यह तमाशा है क्या? कौनसी शक्ति है जिसके बल पर निहत्थे सैनिक भी मैदाने जंग में उतर सकते हैं।

इसी शक्ति की खोज में हमें अपने कुल पिता की याद आ जाती है, क्यों कि उनका हमारे कुलपिता से — घनिष्ठ सम्बन्ध है। वह शक्ति है 'ब्रह्मचर्य'। ब्रह्मचर्य को अहिंसा और सत्य का सुन्दर मेल कहा जाय तो अनुचित न होगा, लोग इसकी - खिल्ली उड़ाते हैं। आधुनिक-युग में ब्रह्मचर्य का नाम लेना हंसी का विषय बन चुका है, पर हमारे कुलपिता ने इसकी जरा भी परवाह नहीं की उसने साबित किया कि भारत का एक २ बच्चा जब तक अपने में इस जीवनी शक्ति को ध्यान न देगा, तब तक वह किसी भी काम-को स्थिरता से न कर सकेगा। सभ्य-संसार —

जातियों की कमजोरियों को दूर करने में अनेक विध उपाय सोचा रहा है, पर इस ओर अब तक उसका ध्यान नहीं खींचा। हमारा कुलपिता तो नामी हकीम था, उसने पहिले तो मर्ज को पहिचाना और भट से एक दवाई भी बनादी। उस दवाई को तैय्यार करने के लिये उसने एक Laboratory की स्थापना की, जो कि 'गुरुकुल' के नाम से प्रसिद्ध है व इसी को ही केन्द्र बना कर वह चाहता था कि भारतीय समाज में नवीन रक्त का संचार हो। यद्यपि वह Laboratory पूरी तरह से चल नहीं पाई, किन्तु देखते देखते ही इसके उपकरणों को दूसरों को अपना लिया और उन का काम चल निकला। साबरमती का सन्त अभी हाल में ही उच्च शिखर पर चढ़ गया है। हम तो हाथ मसलते रह गये; किन्तु उसने तो उसी उपाय के द्वारा एक बार इंगलैण्ड के तख्त को हिला दिया। यही कारण है कि इस समय सत्याग्रह संग्राम पवित्र है। वह अर्थ में सफल होगा क्यों कि इसमें ब्रह्मचर्य के सिद्धान्त का सुचारु रूप से पालन हो रहा है।

इतना ही नहीं। भारत का हृदय-सम्राट जेलखाने में बैठा हुआ भी शक्तिशाली सरकार को जो नाच नचा रहा है उसे अंग्रेज

लोग मरते दम तक भी न भूलेंगे प्रकार यह समझती है कि किसी भी आदमी को कैद करने पर उसकी सब क्रियाओं को बन्द किया जा सकता है। किन्तु इस जेल खाने के पक्षी के बारे में उसको अपनी बात पर सन्देह हो जाता है। आज भी बापू को वही बात खटक रही है जो आज से कुछ दिन पूर्व हमारे कुल पिता को तो यह इस लिये खटकी थी कि यह हिन्दुस्तान में फूंक २ कर पांव धरते हैं। समय पर उन्हें यह बात बहुत अखरी थी कि भारतीय लोग भी अपने घर में छूआ छूत की भ्रांति को जमा रखें। किन्तु बापू के सिर पर तो आपत्ति आ पड़ी थी और उन्हें चेतना आई कि अछूतोद्धार के लिये उसे भी कुछ करके ही दिखाना चाहिये। वह तो एक बार ही समझने लगा कि "या तो मैं ही इस संसार में जीवित रहूं या छुआ छूत, दोनों एक साथ नहीं रह सकते, अगर छुआ छूत रहती है तो महात्मा की जान जाती है। यदि महात्मा जी रहते हैं तो छुआ छूत की जान जाती है। अब देखें ऊंट किस करवट बैठता है। भारतीय जनता महात्मा जी के जीवन को अपना पथ प्रदर्शक बनाती है या छुआ छूत को।

क्या सचमुच भारतीय जनता अपने फकीर को गंवा देगी। छुआ छूत के सामने उसके देह की जरा भी परवाह न करेगी, जो

आज कल

बलिदान को जो कि आज से कुछ ही वर्षों पूर्व हुआ, एकदम भूल जायगी? दुनियां में तो ऐसा कहीं देखने में नहीं आया। हां! भारत में क्यों कि पहले ऋषि मुनि लोग तप करते थे, उनका कामही था बड़े २ चमत्कार दिखाना। शायद उन्हीं का अनुकरण करते २ कई व्यक्ति बाजी मार जांय। यदि मुनियों का कुछ पता तो चलता है नहीं न जाने कब क्या कर दें।

अगर यही बात है तो कुल पिता को किस लिये याद किया जाय उसका बलिदान याद भारतीयों पर इतना भी असर न कर सके तो बात ही क्या बनी फिर तो उसे याद करना न करना एक ही बात है। क्या वह तीन गोलियां आज भी भारतीयों के दिलों पर— घाव नहीं करतीं जिन से कि कुल पिता की जान तक चली गई। — क्या वीर का वह जलूस आज भी भारतीयों के अन्दर जोश पैदा नहीं करता, जिसे देख कर लोगों ने आंसू बंहाए थे। श्मशान की ओर जाते हुए लोगों के दिलों में जो भावनाएँ पैदा हुई थीं, क्या वही भावनाएं उन्हें बेचा-

नहीं आती। आज की लपटों ने सारे भारत को जो सन्देश दिया था क्या वह बालू पर महल महल बनाने के समान भी ही वायु में मिल गया। क्यों फिर उस देह की-राख का टीका लगाने वा महादेव प्रसन्न होंगे? क्यों न! वह महादेव भी तो अपने शरीर को राख से Painted रखते थे। हाय! शरीर को जला कर भी अगर भारतीय लोग उससे-कोई तत्त्व न निकाल सके तो उनसा भी कोई कृतघ्न होगा?

कुल पिता की सबसे बड़ी स्मृति यही होगी कि साबरमती का सन्त जो कुछ चाहता है, भारत सं-तान उसे आंखें मूंद कर मानती चली जाय वह किसी की अक्ल पर ताला नहीं लगाना चाहता, और नहीं किसी से जबरदस्ती ही कराना चाहता है। वह सबको सोचने का मौका देता है, पर सोचने पर भी यदि कोई अपने आचर-णों को उसके अनुसार नहीं बनाता तो इसके लि-ये इससे बेहतर और हो ही क्या सकता है कि वह

आज कल

सैता ही मनाया जाय जैसा
है वह करता है। आज
भी महात्मा 'महात्मा' ही हैं।
पर अब तक यदि भारत
में भलाई सोचता रहा है
तो आगे भी जारी रखे-
गा ऐसी आशा करो
कोई बुरा काम तो नहीं
कुल पिता के बलिदान-
दिवस के अव-
सर पर यदि भाव यदि
भारतीयों के दिलों
में घर कर जाय, तो
उसकी याद का कुछ
फल भी निकले, नहीं
तो ऐसे दिन आते हैं
और चले जाते हैं।

...मैं अपने घर लेता जाता। किन्तु वह बात ...ने नहीं मानी और कहा कि पहले घर ...र ही जायेगा फिर अपनी माता से मिलकर तुम्हारे घर आजायेगा। और यही निश्चय हुआ कि १५ दिन बाद वह मेरे घर आजायेगा।

(५)

सहारनपुर का स्टेशन था। जहां से हम दोनों की गाड़ियें बदलती थी अतः वह हमसे यहां अलग हो गया।

प्लेट फॉर्म के उस ओर उसकी गाड़ी खड़ी थी तथा इस ओर हमारी खड़ी थी। दोनों हमारे सामने वाले डिब्बे में ही बैठे थे। उस समय हमें भावी विचार बड़े उद्विग्न कर रहे थे कि दोनों गाड़ियों ने सीटी दी और वह उधर और मैं इधर, और देखते ही देखते रेलों से एक दूसरे से ओझल हो गये।

(६)

आज ४ अक्तूबर का दिन है। मैं उसके आने की बाट जोह रहा था। सवेरे से सायंकाल तक उसी की बाट देख रहा था। उसके इस आने की खुशी में मैं तेरी बाट - दिन ढल गया। माताजी ने रोटी खिलाई और कहा कि वह शाम को आजायेगा। मेरी माताजी उसे पहले भी जानती थी क्योंकि जाने पर मैं उसे अपने घर ले गया था। शाम के लिये माताजी ने बड़े प्रेम से हम दोनों के लिये हलवा पूरी बनाया।

सायंकाल के ५ बजे होंगे कि मेरा ... वह आने ही वाला था कि बाहर से आवाज़ आई [illegible] विजय। मैंने उसकी आवाज़ पहचानी और भागा व विजय से ... और हम दोनों अन्दर आए मैंने उसे पिताजी को भी मिलवाया। इन्होंने राम राम कहकर ...

थी, कि इतने में मेरे पिता जी आगये।

वे दोनो आपस में बाते करते रहे। मैं उसे लेकर माता जी के पास आया। क्यों कि मैं माता जी का सबसे बड़ा तथा सबसे छोटा लड़का मैं ही था, इसलिये वे उसे भी पुत्रवत् ही समझती थीं।

उसके पिता जी को जरूरी काम था, सो वे तो भोजन खाकर अगली ही गाड़ी से लौट गये। और हमने सात अक्तूबर को दिल्ली जाने का निश्चय किया।

(७)

संसार व्यापी महायुद्ध अभी समाप्त ही हुआ था। भारत में रौलेट-एक्ट लग चुका था। जगह जगह भारतीय नेता उसका अपमान कर रहे थे और उसके बॉय कॉट के लिये जगह २ जलूस निकाल रहे थे। उस समय सारा भारत एक स्वर में उसका विरोधी था। किन्तु हमारे दयालु शासक भी भारतीयों की स्वामि-भक्ति तथा वीरता के परिणाम कुछ न कुछ देना अव[illegible] चाहते थे अत: उन्होंने अपने स्व[illegible] का बहुमूल्य रौलेट-एक्ट का हीरा[illegible] कर दिया। किन्तु हम उस हीरे को लेना नहीं चाहते थे। किन्तु दयावान अंग्रेज लोग बिना दिये मानते कहां थे। इसलिये उन्होंने राजधानी दिल्ली में अपनी सेना को इसी लिये खड़ा कर रखा था। और ये आज्ञा दे रक्खी थी कि जो इसका स्वागत न करे उसे मार डालो।

(८)

८ तारीख को प्रात: काल हम दिल्ली पहुंचे। हम स्टेशन पर उतर कर सीधे धर्मशाला में गये वहां एक बढ़िया सा कमरा किराये पर लिया।

दिल्ली की चहल पहल को देख कर हमें बड़ा आश्चर्य होता था कि हम किस दुनियां में आ गये हैं। हमने एक-एक करके दिल्ली

...भी, सब प्रसिद्ध स्थानों को देख लिया
...नो और उस पर बिना खर्च किये
...आते हुए २० दिन लगा दिये। अब
दिल्ली से लौटने का समय आ गया था।
...दो एक दिन शेष थे।

(५)

आज हमने पिता जी से कहा कि अब लौटने के दिन आ रहे हैं। आज एक बार फिर चांदनी चौक दिखाइये। उन्होंने स्वीकार कर लिया और हम भोजनालय विश्राम करके चांदनी चौक की ओर निकले। बाहर निकलते ही हमें दिल्ली श्मशान सी निःशब्द दिखाई पड़ी। हम बड़े आश्चर्य में थे कि फिर भी बात क्या है। देखते २ हम चांदनी चौक की ओर निकल गये। वहां क्या देखते हैं कि अपनी बन्दूकों को कन्धे पर रखे हुए सिपाही कतार में खड़े हैं और घोड़े पर घूमते हुए अपने नायक को नमस्कार कर रहे हैं। और किसी आदेश को पाने की इच्छा से बिलकुल तय्यार खड़े हैं।

दूसरी ओर बड़े जोर के नारों से भारत के नेताओं की जयध्वनियों से आकाश गूंज रहा था। मानो आज भारतीय किसी त्योहार को मना रहे हैं। देखते ही देखते दिल्ली की सारी जनता जलूस रूप में आ निकली। उस जलूस के सब से आगे भारत का कर्णधार दण्ड हाथ में लिये लम्बा चौड़ा मनुष्य मानो संसार को पराजित करता हुआ निःशंक चला आ रहा था। हम सोचने लगे कि कोई युद्ध होने वाला है जिसमें एक ओर सशस्त्र सैनिक तथा दूसरी ओर निश

हूँ अपने इस काम में भी – जिसमें कि स्नातकों के लिये [illegible] प्रतिकूल सा रहता हूँ – यद्यपि असद् प्रवृत्ति किया हूँ। गुरुकुलीय गौरव वर्धित आपके प्रयास से ही सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ है।

~~इसके अतिरिक्त [illegible] अन्य [illegible] में हिन्दी विवादों में जाने के लिये ब्रह्मचारियों को कुछ अवसर मिलता है।~~

इस वर्ष कुल के प्रतिनिधि दो हिन्दी विवादों में भाग लेने के लिये गये। प्रथम पटना के विवाद में ब्र. नित्यानन्द जी तथा ब्र. सत्यपाल जी चतुर्दश भाग लेने के लिये गये परन्तु दुर्भाग्य वश यह विवाद ही नहीं हुआ। दूसरा विवाद बनारस विश्वविद्यालय में होने वाला था। इसमें भाग लेने के लिये ब्र. नित्यानन्द जी चतुर्दश तथा ब्र. वेदव्रत जी त्रयोदश चुने गये थे। हर्ष का विषय है कि इस वर्ष कठोर मुकाबले के होते हुये भी विजय कुल के प्रतिनिधियों की ही रही। ब्र. वेदव्रत जी प्रथम रहे। कुल में वापिस लौटने पर इन भाइयों का यथोचित स्वागत किया गया तथा हर्ष मनाया गया। हम इस आशा करते हैं कि कुल वासी इस विजय को आगे भी बनाये रखेंगे। यह [illegible] विजयोपहार कुल में इसकी याद [illegible] है।

संस्कृतोत्साहिनी-: यद्यपि इस वर्ष इसका कोई भी साधारणाधिवेशन नहीं हुआ तथापि ब्र. वासुदेव जी त्रयोदश - जो वर्तमान मन्त्री हैं - बनारस में होने वाले संस्कृत वादविवाद में भाग लेने के लिये कुल. के प्रतिनिधि भेजने में पर्याप्त उत्साह प्रदर्शित किया है। विवाद में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों के चुनाव के लिये सभा हुई। जिसमें ब्र. चन्द्रगुप्त जी एकादश प्रथम रहे तथा द्वितीय का निर्णय न हो सका कि कौन जाय। ब्र. भगवद्दत्त जी तथा ब्र. बालकृष्ण जी के विषय में विवाद था। अतः सायंकाल इसके निर्णय के लिये पुन. सभा हुई जिसमें ब्र. सत्यपाल जी चतुर्दश ने भी भाग लिया और वे ही इस प्रतियोगिता में जाने के लिये निर्वाचित हुवे। हमारी सम्मति में इतनी बार सभा का होना ठीक न था उन्हीं भाइयों को विवाद में सम्मिलित होने के लिये भेजना चाहिये जो वहां पर भी नियत समय पर प्रतिस्पर्धा में भाग लें। हर्ष का विषय है कि वहां की जनता पर दोनों बन्धुओं ने गुरुकुल की धाक जमा दी तथा ब्र. चन्द्रगुप्त जी तो द्वितीय पुरस्कार भी जीत लाये।

साहित्य परिषद्-: इसके मन्त्री श्री नीलदेव जी चतुर्दश हैं। आप ने इस वर्ष बहुत उत्साह दिखाया है। अभी तक 1.2 व्याख्यान करा चुके हैं। आशा है मन्त्री जी इस ओर अवश्य प्रगति करेंगे।

आयुर्वेद परिषत् -: इसके मन्त्री ब्र. प्रभाकर जी [illegible]दश हैं। इस जन्मोत्सव बड़ी धूम धाम से मनाया गया। मन्त्री जी ने उत्साह प्रदर्शि. परन्तु इस वर्ष आरम्भ गत वर्षों की अपेक्षा कम हुवे क्या हम आशा- मन्त्री महोदय इस ओर भी प्रगति शील होंगे।

वाग्विकासिनी - तथा वाग्विलासिनी -: जिस उत्साह के साथ इन सभाओं का प्रारम्भ हुवा था यद्यपि वह उत्साह अब नजर नहीं आता परन्तु इतने थोड़े से समय में इन सभाओं ने पर्याप्त सफलता प्राप्त कर ली है। इसी का फल है कि बनारस विश्वविद्यालय में भाग लेने के लिये जाने वाले प्रतिनिधियों में तृतीय तथा ~~[illegible]~~ वाग्वर्धिनी सभा के वर्तमान मन्त्री ब्र. सूर्यकान्त जी यहीं सभाओं के ~~सभ~~ भूतपूर्व सदस्य है। हम मन्त्रियों का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहते हैं कि वे फिर से नवीन उत्साह के साथ इन सभाओं को चलाने में उत्साह प्रदर्शित करें।

खेलें -: इस वर्ष क्रीडामन्त्री श्री विश्वबन्धु जी चतुर्दश हैं। इस अवसर पर उनका वर्ष समाप्त होने वाला है। आपने खेल को प्रोत्साहित करने में कोई ~~[illegible]~~ विशेष उत्साह प्रदर्शित नहीं किया है। इस वर्ष यद्यपि 'श्रद्धानन्द हाकी टूर्नामेंट' की आयोजना की गई थी परन्तु

...के लिये कोई विशेष तय्यारी नहीं की गई। टूर्नामेन्ट ज्यों ज्यों समीप आता गया त्यों त्यों ब्रह्मचारी क्रीड़ाक्षेत्र में कम संख्या में उपस्थित होने लगे। ... क्रीड़ामन्त्री महोदय को इस ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। श्रद्धानन्द टूर्नामेन्ट २१ दिसम्बर से प्रारम्भ हो गया है व ... इसमें ११ दल सम्मिलित हुये हैं।

कुश्ती विभाग के अध्यक्ष ब्र. विद्यानन्द जी जयोदय चुने गये हैं जो कि यथाशक्ति उत्साह प्रदर्शित कर रहे हैं।

इस वर्ष श्रद्धानन्द सप्ताह के अवसर पर अथर्ववेद यज्ञ का आयोजन की गई है। जिसमें चारों वेदों का पाठ हुआ। आज उसमें पूर्णाहुति दी जायगी।

आज श्रद्धानन्द बलिदानोत्सव है। इस अवसर पर श्री पूज्य आचार्य जी कुल में उपस्थित नहीं हैं। हमारी पूज्य आचार्य जी से सादर विनम्र प्रार्थना है कि यदि आचार्य जी ऐसे महत्वपूर्ण अवसरों पर स्वयं हमारे बीच में उपस्थित हो जाया करें तो अत्युत्तम होगा।

7. Question of Subjects

Except for a very few, most students were not in favour of having human rights as a separate subject. Most of them were in favour of giving human rights more importance in Civics and History textbooks by giving it a more elaborate treatment Some of them suggested that human rights could be treated as a separate topic within the existing subjects. Many of them were of the view that more human rights related materials should be included in language textbooks. Many of them also suggested that the mode of teaching this topic should be different from the one that is followed in the teaching of other subjects. Many of them laid stress on co-curricular activities and practice of human rights within the school.

A number of other suggestions emerged during the interviews. Some students mentioned, for example, that corruption as an issue should be highlighted in the curriculum as it affected human rights. Some suggested that there should be awareness of how violations of human rights can be redressed. Some wanted that special campaigns should be launched with the participation of the school for creating awareness of human rights. A few also thought that including human rights in the examination questions would enhance its importance.

B. Interviews with Teachers and Principals

Interviews with three teachers in each school were conducted together while those with the Principals were conducted separately. The same issues were covered in both sets of interviews. The following pattern of responses emerged from these interviews.

1. Coverage in Pre-Service and In-Service Teacher Education

The nearly unanimous view was that human rights materials were not included in the pre-service teacher training programmes and received little attention even in the in-service programmes which are now frequently organized. Every teacher and Principal emphasized the necessity of revising the existing pre-service education curriculum and giving it special attention in the in-service programmes. It was also suggested that the inclusion of human rights related issues in in-service training should cut across subject areas and be available to all teachers irrespective of the subjects they teach. Another suggestion was that for both pre-service and in-service education, content relating to human rights was not enough and that application aspect and development of skills among teachers to deal with this area should receive equal emphasis.

2. Coverage in the existing curriculum

Most teachers' view was that except for violence and consumer rights, all other dimensions were covered in the existing curriculum though according to some it was not adequate. The question of identity was also not a part of the curriculum. They also mentioned that many issues covered in the curriculum which had a bearing on human rights were not specifically seen as human rights questions by teachers. Most were of the view that much of what is given in the curriculum does get comprehended by students of Class VIII or IX with the help of teachers

3. Availability of Learning Materials

The general view was that there was no shortage of print materials and with some efforts schools can procure them. There was a general lack of audio-visual materials. Considering the poor library facilities in most schools in the country, many teachers felt that special efforts

would be needed to make available at least some essential materials to all secondary schools The general lack of availability of international documents was pointed out by many teachers. It was also suggested that the question of availability of suitable materials for students needs to be looked into.

4. Appropriate Age for Introducing Human Rights Ideas

Most teachers thought that for introducing some elements of human rights education, class VI was the appropriate stage (age - 11 years) though they also were of the view that a fuller comprehension would come in class VIII or IX.

5. Types of International Commonwealth Cooperation

Most teachers suggested student and teacher exchange programmes as well as exchange of suitable materials. Some teachers expressed difficulties of international cooperation on such issues due to differences in the educational systems of different countries.

6. Role of Teachers' Organizations

Many teachers emphasized the important role which teachers' organizations can play in promoting human rights education. Some of them pointed out that teachers' organizations by their very nature were concerned with rights. Some teachers, however, also said that teachers' organizations were generally preoccupied with questions of welfare and took inadequate interest in academic matters. The importance of Parent Teacher Associations was emphasized by some teachers

7. Subject of Examination

A majority of teachers were of the view that making human rights a part of examination would be useful as it would then demand greater attention by both teachers and students. Some teachers disagreed with this. They were of the view that if it was made a part of examinations, the kind of teaching/learning mode that human rights education required would be neglected and this area would lose its real importance. Some teachers suggested that it should be introduced in those school classes when students and teachers were not preoccupied with preparing for public examinations.

8 Role of NGOs

Some teachers saw the role of NGOs as very important because the interaction of students and teachers with them will be extremely useful. The NGOs could also play an important role in initiating pace setting activities. However, not every teacher and principal was enthusiastic in involving NGOs.

9. Cross-Curricular or Subject Approach

Most teachers favoured the cross-curricular approach as human rights concepts were relevant to many subjects. They, however, wanted a more elaborate treatment of the various ideas and concepts. They also emphasized the importance of language curriculum. Most teachers emphasized the importance of interactive mode in teaching-learning A few teachers thought that human rights education in the form of a separate subject would be more effective.

10. Policy Changes

The common view was that the present policy framework provided ample opportunities for human rights education and there was no need to consider any policy changes.

C. Interviews with Educational Administrators

At present, human rights as such are not covered in the curriculum of pre-service teacher education. Steps have been taken recently to include it in the in-service training programmes. The need for revising the pre-service teacher education curriculum is recognized, but its inclusion in in-service training/orientation progrmmes is considered even more crucial.

The present school curriculum does contain the component of human rights, mainly in social science subjects (particularly History and Civics) and, to some extent, in languages, and most of the dimensions of the conceptual map are covered. Whether it does get across to students is difficult to answer in the absence of any major studies in this area. Much depends on the efforts of individual teachers, their knowledge and perceptions as well as the pedagogy used in getting it across to students. But it is reasonable to expect that like many other concept and ideas in the school curriculum, the ideas relating to human rights, when transacted properly, do get across to students. There is certainly a need to relook at the curriculum, to identify the inadequacies, and update it and strengthen it.

Availability of relevant materials on any issue can be said to be rarely adequate. More materials are needed, particularly modular materials for both teachers and students, on different aspects of human rights as well as on the pedagogy of human rights.

There are certain concepts of human rights which can be appropriately included even at the primary stage. However, for a better comprehension of the variety of human rights issues and concerns keeping in view the developmental stages, 14 years of age and above may be appropriate.

International cooperation at the Commonwealth level may include exchange of materials produced in different countries and the methods adopted by them in their teaching - learning contexts, bringing out good case studies of innovative strategies in human rights education, studies in the area of comparative education, and interactions between curriculum experts, practising teachers and teachers' organization of different countries.

Teachers' organizations can play a very important role. They can develop materials and disseminate them, promote professional interaction among their members, and influence educational planners and administrators in making human rights education effective.

The promotion of human rights education need not be linked with examinations.

Interaction with NGOs and taking their support can make an important contribution. It should be seen as an aspect of community participation and mobilization for effective implementation.

The cross-curricular approach can be considered appropriate and besides the social science courses, the component of human rights in language and science courses may need to be strengthened. Additionally, it may be possible to develop courses which can together seek to reflect various important contemporary issues and concerns along with human rights. Many human rights issues are intimately connected with various other contemporary issues such as those relating to environment, development, gender discrimination.

There are no issues in human rights education which require any policy changes in our context The main thrust has to be in the area of effective implementation. Educational authorities have to ensure that ideas of human rights are incorporated in the school curriculum as well as teacher education curriculum. Initiatives need to be taken at the school level and by educational authorities to ensure that appropriate co-curricular activities relating to human rights and discussions and debates on issues relating to human rights become a regular part of the activities of the school Electronic media can play a very important role in generating awareness and building a sustained climate of respect for human rights.

Part VI

Main Findings and Recommendations

The study on which this part of the Report is based had certain limitations which should be kept in mind. The limitations of the sample selected -- for the review of curriculum and materials, and of the schools for the administration of the Students' Questionnaire and interviews with students, teachers and principals -- have already been mentioned in Part II (Methodology) of the Report. Besides the conceptual map which provides the overall framework of this study has its own limitations. While it includes many basic dimensions of human rights education, it by no means covers all the major issues and concerns relevant to it. The Students' Questionnaire, based on the conceptual map, which was used in the four countries participating in the study, had a certain universality in its relevance but it did not, and could not, cover many issues that would be important in the specific context of each participating country. The interviews with students, teachers, principals and administrators, of course, provide an extremely useful supplement to the review of curriculum and materials and analysis of the responses to the Questionnaire.

These limitations, however, in no way diminish the significance of this study and its findings. Its being a part of a four country study focusing on major dimensions of human rights education and providing comparative perspectives is by itself of no small importance. It is significant also as a pioneering study with a clear focus on the state of human rights education at the school stage, the perception and understanding of school students on a few selected but major human rights issues and the perspectives of students, teachers and educational administrators for strengthening human rights education at the school level. While the sample selected limits the generalisability of its findings for the whole country, the findings, at the very least, are indicative and provide the basis for hypothesizing for the whole country for conducting further studies. That the sample of the study, though small, was selected from a school system which has its schools in all parts of the country and the schools, both rural and urban, selected in the sample are located in four different cultural-ecological regions of the country add to the significance of its findings.

Main Findings

I Curriculum

1. The school curriculum, particularly in social sciences, introduces students to various issues and dimensions of human rights in both the Indian and the world contexts at various school stages, notably from the beginning of the Upper Primary stage. However, some of these issues are dealt with less adequately than others. In the school, textbooks are the main source of knowledge about human rights. Besides teaching the textbooks, however no special effort is made to promote that knowledge and no special importance is attached to this area. There is little discussion and debate and few projects and activities, in and out of school, on human rights issues are undertaken. The pedagogy adopted for this area is the same as for other components of the curriculum.
2. The prescribed curriculum and materials at the secondary stage do seem to make a difference in students' understanding of human rights ideas and concepts. This is reflected in the differences in the responses of the students belonging to two different school classes to many questions which require a certain knowledge base. It is also reflected, perhaps, in the responses requiring a clear differentiation in terms of the degree of agreement or disagreement and of importance or lack of it.

II Perceptions of Law and Administration of Justice and Equality of Opportunity

The questions relating to these human rights concepts required of the respondents a clear understanding of the distinction between their perception of things as they are and as they should be. The responses show that this distinction is generally well understood and while their perception of things as they are casts a reflection on the existing reality, their understanding of and professed commitment to human rights as reflected in their responses to things as they should be is quite high. About 72 per cent respondents think that the policeman who catches an alleged thief will beat him and about 45 per cent think that the policeman will take a bribe. However, over two-thirds are not only aware of the due process but would also like the alleged thief, even when they advocate the due process to be followed, to be dealt with humanely or with compassion, and over 40 per cent think that one should also go into the

reasons that led or compelled the person to commit the alleged theft. These perceptions reflect a commitment to human rights values which go beyond a commitment to law and administration of justice in terms of due process. It is also notable that the percentage of those who do not think that there would be an open trial, that the person would be defended by a lawyer and that the question of the person's guilt would not be decided until after the case had been heard is not negligible. What may be of even greater concern is that about 18 per cent support the policeman beating the alleged thief. That the lack of support for due process and insensitivity to unlawful acts of the police is not negligible needs to be taken note of. it may also be necessary to go into the possible reasons for this view which may be based on a certain perception of the law and order situation.

The responses to the questions on Equality of Opportunity reflect a greater awareness of and commitment to human rights. About 68 per cent think that the person who performs best at the interview will, in be practice get the job and while about 58 per cent think that the selection will not be determined by considerations of gender, tribe, caste, religion and language, 42 per cent think that these considerations will determine the selection. However, to the question who they think <u>should</u> get the job, about 86 per cent have responded that the most qualified should get the job, and another over 10 per cent think that the most needy or the one both qualified and needy should get the job No student mentioned any other consideration in deciding who should get the job.

III <u>Perceptions of Colonialism, Independence and Democracy, and Civic and Social Rights and Responsibilities</u>

On most questions dealing with these issues which require responses on a five point scale, the responses of an overwhelming percentage of students show a fairly high level of understanding of human rights issues involved; in some cases, it is nearly universal. About 90 per cent students strongly agree or agree with the view that colonialism is wrong because people in every country should be free to choose their own government and their own way of life. About 63 per cent think that a country which is independent is not necessarily a democratic country. Over 85 per cent support the view that for everyone to be able to enjoy their rights, the people need to vote, to obey the law and to take an active interest in what goes on around them. The reasons stated by them for this view include, among others, the

following· otherwise people will be deceived by rulers; otherwise people's rights will be taken away; otherwise stronger people will exploit weaker people; to exercise restraint on the power of ruling groups, it is essential to be innvolved in public affairs. Even those who disagreed (12.5 per cent) had their reasons such as 'All politicians are the same - corrupt - doesn't mater' or 'Because votes can be bought'.

To vote has been considered very important by over 82 per cent and important by another about 14 per cent. The percentage of students who think that it is very important or important for them and their friends to pay taxes which government can use for providing services for the people is 94 and over 95 per cent of students (in the case of class XI students, about 98 per cent) think it is very important or important for them and their friends to know what their government is doing Support for the government and others when they try to take steps for the welfare of the poor is nearly universal.

In their responses to some of these questions, the main difference in the understanding of the two groups belonging to two school classes is reflected in the degree of agreement with, or importance they attach to, a particular right or responsibility. On the importance of voting, for example, while 74.5 per cent of class IX students consider it very important, 91.5 per cent of class XI students do so. Similarly, that independence does not necessarily mean a representative or democratic government is understood by a much higher percentage of class XI students than that of class IX students.

A notable finding from the responses to many of these questions is that while a very high percentage of students, on some almost 100 per cent, shows awareness of human rights, it is not matched by a corresponding expression of enthusiasm and commitment to act for promoting them. For example, while 80.4 per cent think it is very important to support the efforts of the government and others for promoting welfare of the poor, the percentage of those who think it is very important to act to support the efforts for promoting the welfare of the poor 'even if the government itself could not' is only about 52. Similarly, voting in elections is very important to 82.6 per cent, knowing what the government is doing is very important to 75.3 per cent, paying taxes is very important to 67 per cent but the view that they and their friends should be free to join societies, political parties and trade unions is considered very important

by only 36.2 per cent. A similar lack of enthusiasm to act or to express a legitimate grievance is also reflected in the responses to the questions on Equality of Opportunity. As has been mentioned earlier, about 86 per cent think that the most qualified should get the job and another over 10 per cent think that the most needy or the one who is both qualified and needy should get the job. However, only about 57 per cent think that if the person who performed worst at the interview was given the job, the others would have reasons for complaint and 42.6 per cent even disagree with this.

The examples[1] mentioned above, except the last one, refer to only the very important responses which reflect the high degree of importance that the respondents attach to a particular issue. Combined with the important responses, the understanding and perceptions reflected are more reassuring. But the discrepancies in very important responses and the lack of overwhelming support even for expressing a legitimate grievance (in the question on Equality of Opportunity) can be taken to be a reflection of passivity and a reluctance to get actively involved. This phenomenon may deserve to be taken note of by those concerned with education as a whole, including promotion of human rights education.

IV Perceptions of Consumer Rights and Violence

Out of 13 statements relating to consumer rights and violence eliciting response on a five point scale, a majority of students strongly agree with only three, all of which are from the area of consumer rights and none from violence. These three statements refer to the media giving all sides of an event and not only reporting what Ministers and officials have to say (about 65 per cent), taking of bribes by officials being always wrong (about 68 per cent) and prosecuting a company or individual if they pollute or damage the environment (about 61 per cent) Combined with those who agree, the percentage figures are about 91, 84 and 90 respectively. It is notable that these three statements for which there is overwhelming support, including strong support, deal with issues of wider public concern or of public policy. The strong agreement with two other statements on consumer rights which deal with products -- a consumer should get money back if a product is not what it claims or cannot do what it says on the packing and advertizing a product often involves exaggerating or lying about what it can do -- is much less than with the other three statements mentioned earlier, though when combined with those who agree, the percentage in both is cases over 75. The statement that advertizing a

product often involves exaggerating or lying about it has been disagreed and strongly disagreed to by over 17 per cent students. The perception of the possible threat which advertizing poses to the rights of consumers is comparatively less widespread and is felt less internsely than the perception of other threats.

The reasons for lack of strong agreement on statements relating to products may need to be looked into. Most of the products which most Indian consumers buy are not 'packaged' products as they are in some other countries. Most of the products which are marketed with a blast of advertizing are for the relatively well-off and affluent sections. Because of these reasons, the relevance of these questions in Indian conditions is perhaps not very great. Another possible reason is also the lack of enthusiasm on issues involving active participation. There is, additionally, inadequate awareness of the importance of consumer rights issues and the avenues for the redressal of consumer grievances.

There are three statements on doemstic violence -- about husband beating wife, wife beating husband and parents injuring their child. That friends and neighbours should do something in such cases has not been strongly agreed to by a majority of students. The highest percentage of those who strongly agree (a little over 48) is in cases involving husband beating wife. For statements referring to wife beating husband and parents injuring their child, the percentage of those who strongly agree is the same - 34.6. Even when the strongly agree and agree responses are combined, there is much greater support for intervening in case of husband beating wife (about 83 per cent) than in case of wife beating husband and parents injuring their child (over 68 per cent in both cases). These are among the few statements in the entire Questionnaire over which there is very substantial disagreement and strong disagreement -- in the case of husband beating wife, it is 15 per cent but in the case of wife beating husband, it is about 25 per cent and parents injuring their child, about 27 per cent. There are also notable differences in the perceptions of urban and rural students on all three issues of domestic violence. While only 5 per cent urban students are against intervention in case of husband beating wife, this percentage for rural students is over 25, in case of wife beating husband, about 14 per cent urban but about 36 per cent rural students are opposed to outside intervention and there is a broadly similar variation in the urban and rural students' responses on the issue of parents injuring their child. These responses show a much greater awareness of and sense of

concern over domestic violence against women. The issue of oppression of women and violence against them has for long been a matter of public concern and it is not surprising that this concern is shared by students. The issue of wife beating husband is very probably not of much relevance in the Indian context. It is perhaps for this reason that the responses do not reflect any serious concern over this issue. (It may be interesting to mention here that there was much expression of mirth and much giggling by students when they came across the question on wife beating husband -- the prospect seems to have delighted the students, both boys and girls.) The lack of strong support for intervention in case of parents injuring their child and opposition to such intervention by a fairly large percentage of students can be a matter of serious concern. However, it may be useful to keep in mind that while parents beating their child is not uncommon, it is not a major issue of public debate and concern or public intervention. Also, that parents have certain rights over their children, including the right to discipline them, with use of some force if necessary, is perhaps a generally accepted norm in most sections of Indian society Another possible reason for the lack of support for intervention in such cases is that, perhaps, the incidence of serious violence against children in Indian families is much less common than in families in some other societies The responses to all issues of domestic violence also perhaps need to be seen in the context of the continuing importance of the institution of family in Indian society and of the belief that all family matters should remain within the family and that outside interference in family matters is undesirable.

On some other issues, particularly police being right in using necessary force or children not to be bullied by other children, by their teachers or by the parents, the percentage of those who strongly agree or agree is quite high (over 80 per cent) The percentage of those who think that violence of any kind worries them now is over 72 The percentage of those who have stated that violence is sometimes necessary is less than 5. There is, on the whole, a fairly high percentage of opposition to violence in general and support for the use of police force against public violence.

About 68 per cent students -- the percentage is over 73 in case of rural students -- have stated that they have been told in school what the Rights of the Child (given in the United Convention) are. This is particularly notable because schools are not credited with having made any special efforts to promote human rights education

V <u>Perceptions of Identity</u>

The students' perceptions of their identity are reflected in two sets of responses -- ranking of five specified rights in order of the importance they attach to them and their description of themselves in about five words. While analysing the responses to the question requiring ranking, a fairly large percentage (over 23) had to be ignored. Of the responses taken into account -- over 76 per cent of the sample -- the right to life was given the first rank by over 51 per cent, their parents' right to bring them up as they wish was given the first rank by over 20 per cent, right to their name and right to their own language and culture were given the first rank by about 12 per cent each and right to their religion was given the first rank by 5.5 per cent. There are some variations in the responses of class IX and class XI students -- they are quite marked with reference to the right to life and right to their own language and culture -- but these variations do not change the overall pattern that has been mentioned. The highest percentage of students have given the right to life the first rank. This is in conformity with the universally held notion which gives the greatest importance to the right to life. The second highest percentage of students have given the first rank to their parents' right to bring them up as they wish. This reflects the continuing importance of the institution of family and supports what has been stated in the previous section with reference to the question of domestic violence. The right to religion has been given the first rank by only 5.5 per cent students.

The students' own descriptions of themselves clearly bring out that a vast majority of them, in both the age groups, do not see themselves in terms of narrow identities. A vast majority of them describe themselves in terms of good citizenship, as human beings, as those who value equality, as individuals and as member of a family. These responses together may be considered as reflecting an orientation in terms of secular values. This is supported by the responses to the questions on Equality of Opportunity discussed earlier when not a single respondent mentioned considerations of caste, tribe, religion, etc. as factors that should determine the selection of a person for employment. All these responses contradict the common notion that most people in Indian see themselves mainly in terms of their religion, caste or tribal identities. The responses to this and some other parts of the Questionnaire show that this notion is not well-founded at least for this group of student population. It is possible

that many develop notions of themselves in terms of narrow identities at a later stage. Why and when this happens, if it happens, may be matters that need to be studied.

VI Perceptions about the Role of the School in Promoting Understanding of Human Rights

The responses to the Questionnaire (by class XI students only, as required by the design of the study) and the interviews with students bring out that the school is both the most important and the most helpful, though not the sole, source for promoting understanding of human rights issues. The next most important source has been stated to be the media, particularly the audio-visual media. Although over 67 per cent think that their teachers are working together to make sure all students understand human rights and the responsibilities that go with them, over 73 per cent have stated that schools can and should do more in this regard. The specific suggestions which only a small percentage of them has made in their responses to the Questionnaire but more during the interviews regarding what more the school should do reflect their dissatisfaction with school practices and teaching methods and their expectation that the school and their teachers would observe human rights in their treatment of students.

Recommendations

1. More such studies covering different dimensions of human rights should be conducted. These studies should be conducted periodically at both all India and regional/local levels covering various types of schools and student populations There is also a need for conducting such studies for other (non-student) population groups
2. Experimental projects/studies should be taken up to develop materials, teaching-learning methodologies and school practices for improving the effectiveness of human rights education.
3. The approach for introducing human rights in the school curriculum should remain basically cross-curricular. The deficiences in the existing curriculum, some of which are possible to identify on the basis of this study and others, should be kept in view when the national and State level organizations responsible for curriculum undertake the task of curriculum revision. Serious efforts need to be made for changing and transforming the

pedagogical pr other areas, with emphasis on in ojects, inside and outside the class ould make use of expertise available in human rights organizations and NGOs working in this area. There is also a need to improve the ambience and the organization of schools. One of the findings of this study which has been highlighted is that while the awareness of human rights on most issues is quite high, the corresponding willingness to act or to participate with enthusiasm is lacking. This issue deserves particular attention when activities and programmes, including curriculum revision and improving classroom practices, for strengthening human rights education are considered.

4 The national and State level educational bodies and organizations should produce a variety of materials -- print, audio, video -- relating to human rights and disseminate them so that they are within easy access of all schools. These materials should cover human rights ideas and concepts as well as issues and concerns and teaching-learning strategies to facilitate their translation in teaching-learning practices.

While human rights education should become integral to all in -service training programmes for teachers, there is an urgent need to ensure its integration in the pre-service training curriculum. Teachers' organizations should also be involved in human rights education programmes.

6 It is necessary to evolve the necessary mechanisms of coordination between the national and State level educational authorities and institutions for the effective implementation of activities and programmes for strengthening human rights education.

Commonwealth can play an important role in promoting exchange of human rights education materials developed in different countries, sponsoring researches and studies in the area aof human rights education, facilitating interactions between curriculum experts of Commonwealth countries on issues relating to human rights education, and promoting student and teacher exchange programmes and interactions between teachers' organizations.